— रामकृष्ण 'भारती' —

निर्भर

रामकृष्ण 'भारती'

द्वितीय परिवर्धित संस्करण

मूल्य ३)

प्रकाशक

भारती-प्रकाशन-मंदिर, कलकत्ता

—प्राप्ति-स्थान

१. विश्वेश्वरानन्द पुस्तक भंडार, साधु आश्रम होशियारपुर,
२. आत्माराम एण्ड सन्ज़, काश्मीरीगेट, दिल्ली-६,
३. राजपाल एण्ड सन्ज़, काश्मीरीगेट, दिल्ली-६,
४. दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रास,
५. सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, बनारस,
६. नवयुग-ग्रन्थ-कुटीर, बीकानेर (राजस्थान),
७. हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, कलकत्ता,
८. आर्य बुक डिपो, करौलबाग़, नई दिल्ली-५,
९. सुमेर ब्रादर्स, बिड़ला लाइन्स, दिल्ली-६,
१०. रेफ़िल आर्ट प्रेस, ३१, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता-७,
११. साहित्य रत्न भंडार, आगरा,
१२. विशाल भारत बुकडिपो, कलकत्ता,
१३. आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता,

तथा अन्य स्थानीय पुस्तक-विक्रेता।

मुद्रक
धन्नालाल बरड़िया
रेफिल आर्ट प्रेस,
आदर्श साहित्य संघ द्वारा संचालित
३१, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता-७

प्रिय रफ़ीक !

तुमने मुझमें कविता की रुचि उत्पन्न की, यह उसीका परिणाम है। तुम शरीर रूप में सामने नहीं हो, पर तुम्हारी स्मृति की धरोहर मेरे हृदय में आज भी सुरक्षित है।

पूज्य पिताजी !

जीवनभर आपसे दूर रहकर यही कामना रही कि आपके चरणों में रहूँ। वर्षों के बाद अवसर भी आया, किन्तु आप हमें रोता छोड़कर चले गए! १२ अगस्त, १९४७ की विदाई अन्तिम जुदाई बन कर रह गई!

पूज्य माताजी !

आप भी चली गईं? पिताजी के बिना आपका जीवन कैसे कटता? बचपन के दोनों साथी साथ ही गए, यही एकमात्र सान्त्वना है। यह बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा!

प्यारे बच्चे !

लोग कहते हैं, तुम्हें ज़हर दिया गया। कुछ भी हो; तुम आए ही क्यों, यदि एक झलक दिखला कर चले ही जाना था? तुम्हारी मुसकान आज भी उसी रूप में सामने है।

'भारती'

कवि-सम्राट् स्व० श्री अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' का

आशीर्वाद

"प्रियवर,

आशीर्वचनानि। × × कुछ अस्वस्थ हो गया हूँ। × × आपके ग्रन्थ के विषय में कुछ लिख नहीं सका। इसका खेद है, परन्तु विवशता विवशता ही हैं। यह पत्र भी कठिनता से लिख रहा हूँ।

आपके गद्य-पद्य दोनों की मैं हृदय से प्रशंसा करता हूँ। आपकी वाक्य-रचना हृदयहारिणी और मनोहर होनी है। भावुकता तो आपके हिस्से में रहती है। भाव-व्यंजना कविता का प्रधान गुण है। आपमें इसकी मात्रा अधिक है और वह इतनी मुग्धकारिणी है कि उसकी बहुत कुछ प्रशंसा की जा सकती है। "हिन्दी-गद्य" में यदि आपकी सुन्दर संग्रह-कारिणी शक्ति का विकास दृष्टिगोचर होता है, तो पद्य-ग्रन्थ (निर्झर) में आपकी प्रतिभा चमत्कारयुक्त दिखलाई देती है। इसके गद्य में भी पद्य का आनन्द आता है। पंजाब प्रान्त में रहकर भी आप इतन मोहक गद्य और पद्य लिख सकते हैं, यह साधारण बात नहीं है। मुझे इसका हर्ष है और मैं आपका हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में अभिनन्दन करता हूँ। निर्दोष कविता करना साधारण बात नहीं, फिर भी मैं यह कहूँगा, कि आपने इस विषय में सावधानी से काम लिया है।"

हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी
१५-१२-४०

हितैषी
"हरिऔध"

प्राक्कथन

श्री रामकृष्ण 'भारती' अपने साहित्य-काल के प्रारम्भ से ही मेरे इतने निकट आ गये हैं कि मैं उनके विकास के शिथिल-अशिथिल सभी प्रयत्नों की ओर जागरूक होकर देखता रहा हूँ, मानो वैसा देखने के लिये उन्होंने मुझे उपनी ओर खींचा भी है।

लोग कहते हैं—कवि पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते। इस बात में वहुत कुछ सचाई हो सकती है, परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि कविता की अन्तर्हित अग्नि को, यदि उसे अग्नि कहा जाय तो, कुरेद देने की आवश्यकता है। संयोग और प्रेरणा—ये दोनों ही चीज़ें प्रायः कवियों के उभार में सहायक सिद्ध हुई हैं। बड़े-बड़े अचानक बन जानेवाले वैसे कवियों के उदाहरण देकर बात को पुष्ट करने की न तो मेरी इच्छा ही है, न क्षमता, परन्तु देखता हूँ अचानक एक दिन सुन्दर लय के साथ न जाने मेरी या किसी अन्य कवि की कविता सुनाकर श्री "भारती' ने मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। धीरे धीरे एक दिन मैंने देखा कि प्रभात-ज्योत्स्ना के मन्द प्रकाश में उन्मुक्त-पंख भ्रमर की तरह उन्होंने अपने ही शब्दों में गुनगुनाना भी प्रारम्भ कर दिया और आज वह अस्पष्ट गुनगुनाहट को वाणी देकर हमारे सन्मुख भी आ गये हैं।

मेरी समझ में जैसे कवि का चित्रकार बन जाना स्वाभाविक है, उसी तरह विशेष प्रेरणा होते ही एक स्वरकार का कवि हो जाना भी सहज है। श्री 'भारनी' वैसी ही कवि हैं!

× × × ×

भारतवर्ष सदा कविता-प्रधान देश रहा है। आदि-काल से लेकर चरम उन्नति के समय तक और दासता के काल से राजनीति के युग तक

इसमें कविता-सरस्वती की आराधना होती रही है। और अब भी वह युग बीत नहीं गया है। सच तो यह है कि मानस-बन्धन के समय भी उसका यह गुण प्रधान रहा है। मैं मानता हूँ कि रस का अतिरेक ही कविता का स्रोत है। आज जब कि हमारी विवशता सप्राण मूक होकर जीवन का नया रूप देखना चाहती है, उसके लिये तड़प रही है, तब निराशा का वेग भी अविच्छिन्न प्रवाह से कविता की ओर ही उन्मुख हुआ हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

आज का भारतीय पंजरबद्ध पक्षी की तरह उन्मुक्त होने के स्वप्न देख रहा है। मार्ग उसके सामने कोई नहीं है। तब कल्पना के रूप और अपरूप से वह उसी दिशा की ओर उड़ जाने को सक्षम होना चाहता है, जिसमें उसका मानव अपना बन्धन तोड़ सके। उसके सामने या तो वर्तमान के प्रति विरक्ति है, उसका उद्वेग है, बेचैनी है या फिर भावी सुख का वह आलोक, जिसकी वह कल्पना कर सकता है।

इसीलिये कल्पना और अनुभूति की प्रचुरता में वह छायावादी और रहस्यवादी बना है और यथार्थ की ओर आँख खोल कर देखने पर प्रभाववादी या प्रगतिशील भी। कदाचित् छायावाद मानसिक आत्मतोष है और यथार्थवाद प्रत्यक्ष के प्रति विद्रोह तथा जीवन के सीमा-बन्धन को तोड़ कर, उसे कुचल कर वहाँ पहुँचने की चाह, जिस जगह यथार्थ मस्तिष्क की दासता से परे और हृदय की आकांक्षाओं से पूर्ण हो।

कहा जा सकता है कि हँसिया, हथौड़े, मज़दूर, किसान, ग़रीब, क्षुधित, पीड़ित, दलित में कविता का बिलकुल ह्रास हो गया है। वह वास्तविक शान्ति और जीवन में प्रेरणा, स्फूर्ति देने वाली वस्तु नहीं

रह गई है। उसका रूप बदल कर 'उपदेश' बनता जा रहा है। वह एक प्रकार की पद्यबद्ध मीठी राजनीतिक फटकार भर रह गई है—यह हेय है—अनुपादेय है !

हमें इसका दुःख है कि कविता वस्तुतः कविता नहीं रह गई है। वह स्वर्ग से उतर कर मर्त्यलोक में भिखारिन के फटे कपड़ों में, उसकी सदय वाणी में मूकरूप से आकर बैठ गई है। वह किसान की दुरवस्था, उसकी अनन्य पीड़ा से बँध गई है, जहाँ से जल्दी छुटकारा पा जाने की कदाचित कोई सम्भावना भी दिखाई नहीं देती। वह अपने आदर्श से भी गिर गई है।

परन्तु क्या जीवन के साथ उसका कोई सामंजस्य नहीं हो सकता ? हमारे साथ, हमारी अनुभूति के साथ क्या उसकी कोई संगति नहीं बैठ सकती ? जहाँ जीवन है, वहीं उसका साहित्य है। यदि कविता को स्वर्ग से उतर कर नरक में आना पड़ा है, तो हम भी तो स्वर्ग से ही उतरे हैं ? मुझे यहाँ एफ़. आर. लीविस के वे वाक्य उद्धृत करने में कोई आपत्ति नहीं है, जिनमें उसने साहित्य के साथ जीवन का समन्वय स्थापित करते हुए कहा है :—"The spirit of the age......is the thing which gives most immediately what life may reside in what a writer says." अर्थात् युग का प्रतिबिम्ब लेखक की उस सजीव रचना से हमें प्राप्त होना चाहिये, जिसमें वह हमें बतावे कि उसने किस हद तक युग की आत्मा को अभिव्यक्त किया है।"

इसीलिये और केवल इसीलिये यदि साहित्य के अंगों के समान कविता का दृष्टिकोण भी बदल कर चेतावनी-मात्र रह गया है, हमें कौंच

कर उठाना-भर रह गया है, तब कला के उन उन पुराने मित्रों को, हम नहीं समझते, आपत्ति क्यों होनी चाहिये ?

यदि इतिहास में मकरन्द-मादिनी रानियों ने भी समय के फेर में पड़ कर बाँदियों का काम किया है, उन्होंने जगत् को आँख खोल कर स्पष्ट जगत् को ओर देखना सिखाया है। यदि हरिश्चन्द्र को राजा होकर भी श्मशान में कफ़न-खसोटी काम करना पड़ा है, तो मनुष्य को सोते से उठाने के के बाद कविता अपने पुराने रूप में पुरानी आत्मा में भी तो आ सकती है ! कविता जैसे स्वर्ग है, वैसे ही जीवन भी है, जैसे वाणी है, वैसे ही क्रिया भी है, प्राण है, हृदय भी है ?

यह हिन्दी की और हिन्दी की ही नहीं, भारतीय भाषाओं की क्रान्ति का युग है। भाषा हमारे जीवन की प्रतिध्वनि है। यदि वह सत्य है, तो उसका यह रूप भी सत्य ही होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

अस्तु, श्री भारती की इन कवियों में वैसी ही निराशा, वैसा ही यथार्थ, वैसी ही तीव्रता पाठक पायेगा। एक जगह मनुष्य के यथार्थ रूप के प्रति कवि कहता है:—

कसक है, टीस है, औ' बेकली है,
कसकती वेदना का भार हूँ मैं,
घटाएँ हैं, निराशा की अमा है,
अमा में पूर्णिमा-साकार हूँ मैं।

आगे कहता है:—

हृदय में आग जो फूंके निरन्तर,
प्रलय बन, वह प्रलय-हुङ्कार हूँ मैं,

× × ×

उजड़ने के लिए ही मैं बना हुँ,

मरण-छवि का वितत-विस्तार हूँ मैं।

मनुष्य के प्रति कवि कहता है :—

भूधर से भी ऊँचा है, अभिमान यहाँ मानव का।

पर निर्मित है मिट्टी से—ही क्षीण-काय यह उसका।

सुख के साथ दुःख, आशा के साथ निराशा भी संसार में हमें मिलती है, उसी को 'स्वर्ग' सामक कविता में लेखक ने बताया है :—

आज मैंने स्वर्ग देखा

स्वर्ग में अपवर्ग देखा।

दुख, निराशा की घटाएँ छा रहीं भू पर निरन्तर,

आँधियाँ तूफ़ान चलते, रात-दिन इस हृदय भीतर,

थम गया है आज अंधड़, है प्रकाशित प्राण - रेखा।

एक जगह वह फिर कहता है :—

उठ हृदय में आग भर ले,

आग में अनुराग भर ले,

प्राण - कंप विहाग भर ले;

बिजलियों से खेलता चल, पीसता चल रे निराशा!

इस संग्रह में 'मज़दूर' जैसी कुछ प्रगतिशील कविताएँ भी आ गई हैं। लेंखक ने अपने गद्य-गीतों का चयन भी इसमें दिया है, जो कहीं-कहीं बहुत ही सुन्दर है।

"नूरजहाँ की कब्र पर" शीर्षक गद्य-गीत में कवि लिखता है :—

जीवन की छाया इतनी काली होती है!

स्वर्ग इतने रीते हो जाते हैं !

वैभव इतना पीला पड़ जाता है !

हृदय इतना ठण्डा हो जाता है !

महत्वाकांक्षाएँ इतनी निस्पन्द और नीरव हो जाती हैं !

यह सब मैंने कहाँ देखा है ?

आकाश के छत्ते में अपने-अपने घरौंदे बनाकर रहनेवाले मनुष्य क्या इसी तरह निराशा के दामन में मुँह छिपाकर सो जाते हैं हमेशा के लिए ?

जहाँ संसार सूना होकर अपने हृदय को अपनी आँखों में छिपा लेता है।

अपनी उमंगों को थपथपाकर सुलाने का यत्न करता है।

क्या वे नीरव और सुप्त-क्षण नूरजहाँ, तुम्हारी मुसाफ़ित नहीं मिल पाते ?

इसी प्रकार "बन्धन और मुक्ति" तथा "नहीं" इत्यादि गद्य-गीतों में कवि ने कुछ मौलिक विचार उपस्थित किए हैं।

श्री रामकृष्ण 'भारती' बड़ी क्षिप्रता से साहित्य की ओर बढ़ रहे हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि वे शीघ्र ही काव्य-जगत् में अपना स्थान बना लेंगे।

मैं उनके इस प्रथम प्रयास का हार्दिक सत्कार करता हूँ और विश्वास रखता हूँ कि पाठकगण उनकी कविताओं में रस-सौन्दर्य के साथ गीति-सौन्दर्य का भी अनुभव करेंगे।

—उदयशंकर भट्ट

५, कृष्णागली, लाहौर
१५-१२-४०

दो शब्द

लेखक को अपनी कृतिके विषय में कुछ कहना चाहिए, ऐसी परिपाटी चली आई है। अपनी रचनाओं के विषय में मैं क्या कहूँ ? कलाकारों की रचनाएँ गुनगुनाते-गुनगुनाते स्वयं भी कुछ गुनगुनाने लगा। उसी गुनगुनाहट के कारण गुरुजनों ने मुझे कवि कह डाला और ठोक-पीटकर मुझे इस संग्रह को प्रस्तुत करने के लिए बाध्य किया। उसी आज्ञा के वशीभूत होकर बड़े ही संकोच से मैं इस कृति को प्रस्तुत कर रहा हूँ। छन्दों के साथ कुछ गद्य-काव्य भी संकलित करने की धृष्टता मुझसे हो गई है, इसका कारण इतना ही है कि मैं अपने हृदय के भावों को उनमें कविताओं की अपेक्षा स्पष्ट कर सकने में अधिक समर्थ हुआ हूँ। प्रस्तुत संग्रह की प्रायः सभी रचनाएँ पिछले पांच छः वर्षों के बीच में समय-समय पर लिखी गई हैं।

इन रचनाओं में पाठकों को शायद उतना आनन्द न मिल सके, जितना दुःख और बेचैनी, किन्तु इसके लिए मैं विवश हूँ। हृदय के भावों को कृत्रिम रूप से प्रगट करने का मैं आदी नहीं, यही मेरी भावुकता और विवशता है।

बाह्याडम्बरों से बचने की इच्छा होते हुए भी अपने आदरणीय अग्रजों के प्रति कृतज्ञता प्रकट किए बिना मैं नहीं रह सकता। श्रद्धेय भट्टजी के आशीर्वाद और स्नेह प्राप्त करने का मुझे गर्व है। श्री प्रेमीजी तथा माधवजी का धन्यवाद किए बिना मैं नहीं रह सकता, जिनसे समय-समय पर मुझे अनेक प्रकार के सत्परामर्श प्राप्त होते रहे हैं।

५, गुरु अर्जुन नगर, लाहौर] —रामकृष्ण 'भारती'

द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में

"निर्झर" सन् १९४० के अन्त में लाहौर से प्रकाशित हुआ था। सन् १९४७ में देश के विभाजन के समय 'निर्झर' की शेष कुछ प्रतियाँ भी वहीं रह गईं। प्रयत्न करके ही एक-दो प्रतियाँ भारत में मित्रों से जुटाई गईं।

जब तब 'निर्झर' की माँग बनी रही। इसके द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करने की समस्या गत नौ वर्षों से सामने रही है, किन्तु मार्ग में अनेक उलझनें रहीं। इस बार कलकत्ता आने पर यह निश्चय हुआ कि यह कार्य कर ही लिया जाय। इसमें १९४० के पश्चात् की रचनाएँ भी सम्मिलित कर दी गई हैं। जो कुछ तुकबन्दियाँ इधर लिखीं, उनमें से कुछ एक पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने की धृष्टता कर रहा हूँ। पहले संस्करण में आदरणीय 'हरिऔधजी' की भूमिका देर से प्राप्त होने के कारण आशीर्वाद के रूप में पुस्तक की जिल्द के पीछे छापनी पड़ी। अब, जब वे शरीर रूप में नहीं रहे, तब उसे उसके उपयुक्त स्थान पर दिया जा रहा है। गुरुजनों के आशीर्वाद तथा मित्रों के प्रेमभाव से ही यह सब कार्य सम्पन्न हो रहा है। इसके लिए किस-किसको क्या कहकर धन्यवाद दूँ अथवा कृतज्ञता प्रकाशन करूँ? प्रिय श्री सत्यनारायण मिश्र पत्रकार तथा श्री धन्नालालजी बरड़िया का हार्दिक धन्यवाद न करना कृतघ्नता होगी।

"हिन्दी गद्य" आदि मेरे कई प्रकाशित तथा कई अन्य अप्रकाशित ग्रन्थ आज भी उपलब्ध नहीं। लेखक के लिए उसकी सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति उसकी रचनाएँ ही होती हैं। फिर वे कैसी ही क्यों न हों!

इन कुछ शब्दों के साथ "निर्झर" पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। अच्छा है या बुरा, इस विवाद में मैं क्यों पड़ूँ?

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये।"

कलकत्ता, शिवरात्रि, सं० २०१३] —रामकृष्ण 'भारती'

संकेत

१. प्रार्थना १
२. अपनी बात २
३. निर्झर ३

● आह्वान

४. लक्ष्य ४
५. दीपक ५
६. सन्देश ६
७. उद्‌बोधन ७
८. मानवता का सम्मान करो ९
९. राही, पथ पर मुसकाता जा १०
१०. मंज़िल तेरी दूर ११
११. नाविक सोच समझकर चलना १२
१२. जागरण-गीत १६
१३. कवि स १२७

● भावचित्र (गद्य)

१४. नामहीन १७
१५. प्रार्थना १८
१६. तुम्हारी धरोहर २०
१७ नहीं २१
१८. तूफ़ान की वेला २२
१९. सुन्दरतम हे ! २४
२०. उस पार २५
२१. न्याय की भीख २६
२२ पत्रकार २७
२३. जाने दो २८
२४. नूरजहाँ की कब्र पर २९
२५. कब आओगे ? ३१
२६. ऐसा क्यों ? ३२
२७. बन्धन और मुक्ति ३३
२८. अभिमान ३४
२९. क्रीड़ा-स्थल ३५
३०. साधना का पुरस्कार ३६
३१. भूल ३७
३२. अपना और पराया ३९
३३. रूठे स्वामी ४१
३४. आशंका ४२
३५. यात्री ४३
३६. आनन्द गीत ४५
३७. नहीं मालूम ४६

● भाव-लोक

३८. शैशव ४६
३९. हाहाकार ४९
४०. स्वर्ग ५०
४१. तुम और मैं ५१
४२. अनुरोध ५२
४३. दीपमाला ५३
४४. नाविक से ५४
४५. मतवाला ५५
४६. कौन है मेरे हृदय में ५६
४७. ले लो अपना वरदान ५७

४८. ??? ६४
४९. चिन्ता ७२
५०. जल रही बाती ८४
५१. चाँद जितनी दूर १२१

● जीवन-दर्शन

५२. जीवन-संदेश ८
५३. मानव ५९
५४. मैं ६५
५५. मत हैरान करो ६६
५६. अकेला ६७
५७. कहानी ६८
५८. गीत ६९
५९. उद्गार ७०
६०. मरने पर भी वह सदा अमर ७१
६१. परिचय ७४
६२ उपहार ७५
६३ जिन्दगी के गीत गा ७६
६४. जवानी ढल रही है ७७
६५. जीवन का कौन ठिकाना ७८
६६. झूठ सुनकर··· ७९
६७. आज कैसी यह जुदाई ८०
६८. ···किसने पहचाना ? ८१
६९. यह जीवन ··· १२५
७०. मैं अपनी राह ··· १६६
७१. चाँद से जितनी ··· १६७
७२. अब क्यों तू रोता है ? १६२
७३. भ्राँति ९४

● वेदना

७४. पीड़ा ७३
७५. आसूँ ८२
७६. कैसा गीत ? ८३
७७. वेदना ८५
७८. तार ८६
७९. गाने दो ८७
८०. आज़ादी का मूल्य ८८
८१. क्यों नहीं उल्लास के क्षण ? ९०
८२. हार ? ९१
८३. क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं? ९२
८४. क्या मेरा अपराध ? ९३

● युगवाणी

८५. मज़दूर ९५
८६. नया विकास चाहिए ९६
८७. नया निर्माण करना है ९८
८८. कुटी और महल ९९
८९. प्रगति की ओर १००
९०. एशिया अब जागता है १०२
९१. नया राष्ट्र है आज पनपता १०३
९२. आग लगादें १०४
९३. हिंसा की ज्वाला १०५
९४. अजीब हाल है यहाँ १०६
९५. मेरे किसान १०७
९६. ज़मीन दो, ज़मीन दो १०८

९७. सदस्याओं का बोझ १०९

९८. बगावत १२२

● प्रकृति-दर्शन

९९. सावन के घन ११०

१००. चल रहा है कारवाँ १११

१०१. क्या किया जाय ? ११७

१०२. प्रकृति-बाला ११८

१०३. नौका-विहार ११९

१०४. वसन्ती साज़ १२०

१०५. धूप बढ़ती जा रही है १६२

१०६. धूप ढलती जा रही है १६५

○ सामयिक

१०७. रक्षा-बन्धन १२८

१०८. आवाहन १२९

१०९. माँ का प्यार··· १३०

११०. कृष्ण से ! १३१

१११. शिवरात्रि १३२

११२. राखी का दिन आज १३६

११३. रक्षा बन्धन आज १३७

११४ यह आज हुआ क्या है ? १३८

११५. बंगाल की कहानी १३९

११६. हुँकार १४१

११७. पन्द्रह अगस्त १४२

११८. है वही रात··· १४३

११९. २६ जनवरी १४४

१२०. बलिदान-दिवस पर १७०

● राष्ट्रीय

१२१. ज्वाला अथवा हाला १३

१२२. भारत मेरा··· १४०

१२३. यह मेरा भारत··· १४५

१२४. बनेगा स्वर्ग··· १६३

१२५. भारत माँ की··· १६४

१२६. बढ़े चलें, बढ़े चलें १६८

१२७. जय-जय प्यारा··· १७०

● व्यक्तित्व

१२८. महात्मा बुद्ध १४७

१२९. बापू महान १४९

१३०. कमाल १५०

१३१. टैगोर १५२

१३२. सरदार हमारा चला गया १५३

१३३. भूदान यज्ञ के सूत्रधार १५४

१३४. बंगाल-केसरी १५५

१३५. कौन था ? १५६

१३६. आचार्य शुक्र के प्रति १५७

१३७. महाकवि निराला १५८

१३८. हिमगिरि के उत्तुंग··· १५९

१३९. शत शत प्रणाम १६०

१४०. विदाई पर १६१

● विविध

१४१. विश्व-ज्योति चमके ८

१४२. नशा १२३

१४३. शिक्षा १२४

१४४. वरदान १४६
१४५. हिन्दी नाद १७१
१४६. हिन्दी गान १७२
१४७. हिन्दी नौजवान तू १७३
१४८. अभिनन्दन १७४
१४९. उल्टी सीधी बातें १७५
१५०. भारत है स्वाधीन १७६
१५१. मंगल-कामना १७७
१५२. पहले जो कभी १७८
१५३. परिशिष्ट १७९

श्री रामकृष्ण 'भारती' के गीत-संग्रह 'निर्झर' पर

विद्वानों तथा पत्र-पत्रिकाओं की

सम्मतियां

१. *प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति स्वर्गीय डा० अमरनाथ झा*—"निर्झर मैंने पढ़ लिया है...। सफल प्रयत्न पर हार्दिक बधाई। आप में लिखने की शक्ति है, कल्पना भी यथेष्ट है। आपकी अन्य कृतियां भी ऐसी ही हृदयङ्गम होंगी, यह मेरा बिश्वास है।" [प्रयाग विश्वविद्यालय—१९-२-४१]

२. *प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० धीरेन्द्र वर्मा* :—"निर्झर" की भेंट के लिए अनेक धन्यवाद...। मैंने उसका अधिकांश पढ़ा। गद्य और पद्य दोनों ही प्रकार की रचनाओं में गीति-काव्य का आनन्द मिलता है...। रचनाएँ भावुकता तथा सहृदयता से पूर्ण हैं तथा सुथरी शैली में लिखी गई हैं। इस सुन्दर कृति के लिए बधाई।" [प्रयाग—१०-१-४१]

३. *नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के भूतपूर्व प्रधान तथा डी० ए० वी० कालेज बनारस के भू० प्रिंसिपल स्व० श्री पं० रामनारायण मिश्र* :—"आपका "निर्झर" मैंने पढ़ा है। इसमें न्यागरा का गर्जन-तर्जन नहीं, बल्कि गंगोत्री का सौम्य-सुखद प्रवाह है। जल परम शुद्ध और स्वास्थ्यकर है। छोटे-छोटे उपलखंडों से

टकराकर बहती हुई इसकी स्वाभाविक छटा केवल किनारे पर खड़े होकर देखने की ही वस्तु नहीं है। उसमें अवगाहन करके हृदय सचमुच आनन्द के साथ स्फूर्ति भी प्राप्त करता है। हिन्दी के काव्योपवन में आपके "निर्झर" का स्वागत करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।" [काल भैरव, काशी ११-२-४१]

४. *उत्तर भारत का प्रसिद्ध दैनिक 'ट्रिब्यून'* :—"Bharati's poems are as fresh as a little spring. Most of the poems are lyrics. It could not be otherwise with a poet, who is also a singer……His style is easy without being commonplace and his diction dignified without being difficult. In his prose-lyrics 'Bharati' is at his best…"

[The "Tribune" 6-1-41.]

५. *कल्याण (गीता प्रेस, गोरखपुर) के यशस्वी संपादक श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार* :—"निर्झर" को मैंने देखा है…सचमुच बड़ी सुन्दर रचना है। आनन्द का पवित्र निर्झर ही है। आपकी इस कृति से यह आशा होती है कि आप शीघ्र ही काव्य-जगत् में सुप्रतिष्ठित स्थान बना लेंगे। छपाई भी बहुत सुन्दर है…।"

[रतनगढ़-१४-२-४१]

६. *'बाल सखा' तथा 'हल' के भूतपूर्व सम्पादक ठाकुर श्री श्रीनाथसिंह* :—"निर्झर" की प्रति मिली। बहुत बहुत धन्यवाद। …रचना सुन्दर है।" [प्रयाग--१५-२-४१]

७. *हिन्दी के प्रसिद्ध साप्ताहिक "देशदूत" के भूतपूर्व यशस्वी सम्पादक श्री ज्योतिप्रसाद 'निर्मल'* :—"पं० रामकृष्ण 'भारती' हिन्दी के सफल लेखक, आलोचक और कवि हैं। 'निर्झर' में उनकी कविताओं का सुन्दर और आकर्षक संग्रह है। सभी कविताएँ काव्य की दृष्टि से अनूठी, भाव-व्यंजना तथा आत्मा-नुभूति से पूर्ण तथा नई विचारधारा से प्रभावित और हृदय-स्पर्शी हैं। भाषा शैली प्रांजल और मधुर है। मुझे विश्वास है कि हिन्दी साहित्य में 'निर्झर' अपनी एक विशेषता रखता है...।"

"...निर्झर' मैंने पढ़ा...बड़ी सुन्दर कृति है।...कविताएँ तो आप बड़े मार्के की लिखते हैं, इसमें सन्देह ही क्या है ?"

[देशदूत कार्यालय, इण्डियन प्रेस, प्रयाग--१९-२-४१]

८. *हिन्दी के निर्भीक आलोचक पं० किशोरीदास वाजपेयी* :— "निर्झर" मुझे पसन्द आया है...। इसकी लहरें उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द मन पर असर डालती हैं...। दोनों तरह के मुक्तक— गद्य और पद्य—मुझे अच्छे लगे हैं...।" [कनखल—२२-१-४१]

९. *नागपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तथा हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक श्री विनयमोहन शर्मा* :—"निर्झर' प्राप्त हुआ। उसकी कई बूँदें 'मधुर' हैं—थके हुए दिमाग को सेहत पहुंचाती हैं। आपसे सरस-साहित्य की भी श्रीवृद्धि होगी ऐसा मेरा विश्वास है।" [नागपुर २१-२-५१]

१०. *अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रधानमन्त्री प्रो० श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०* :—"मैंने कुछ कविताएँ 'निर्झर' से पढ़ी हैं और वे मुझे अच्छी लगी...।" [वर्धा—१४-२-४१]

११. हिन्दी का प्रसिद्ध मासिक 'विशाल भारत' :—"…रच-नाएँ पढ़कर लेखक की उदीयमान कवि-प्रतिभा का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।…गद्यकाव्यके प्रेमियों को 'निर्झर' के गद्य-काव्यों में भी काफी आनन्द प्राप्त होगा…।" [मार्च, ४१]

१२. हिन्दी की प्रमुख मासिक पत्रिका 'सरस्वती' :—"क्रान्ति के जिस युग से कवि गुजर रहा है, उसका प्रतिविम्ब हमें उसकी रचनाओं में मिलता है।…कवि की पीड़ा बहुमुखी है।"

[मार्च, १९४१]

१३. मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर की मुख्य पत्रिका 'वीणा' :—"अन्य कवियों की भाँति 'निर्झर' का कवि भी संसार की क्रान्ति-वेला की ओर से आँखें नहीं बंद किए है। …प्रगतिवाद या रहस्यवाद के पीछे न पड़कर कवि ने अपने विचार सरल रूप में उपस्थित किए हैं।" [मार्च, १९४१]

१४. हिन्दी का प्रसिद्ध आलोचना-प्रधान मासिक 'साहित्य-सन्देश :—"…रचनाएं काफी सफल हैं, पर उनका सबसे बड़ा गुण है—वेग और स्फूर्ति। पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होगा, मानो कवि एक सांस में सब कुछ कहने को व्याकुल है।…उसका अपना स्वर करुण है, पर दूसरों को सन्देश साहस का दिया है…।" [फरवरी, १९४१]

१५. हिन्दी का प्रसिद्ध साप्ताहित "देशदूत" :—"भारती" जी की विशेषता यह है कि वे कविता में छायावाद या रहस्य-वाद के चक्कर में नहीं पड़े।…गद्य तथा पद्य दोनों की शैली रोचक है। भाषा सरल तथा सुबोध है। [९ मार्च, १९४१]

१६. खण्डवा (मध्यप्रदेश) से प्रकाशित होनेवाला प्रसिद्ध साप्ताहिक "स्वराज्य"—'निर्झर' में बनावट नहीं है, भाषा की केवल खिलवाड़ नहीं है, उसमें रचयिता के हृदयोद्गार हैं।"

१७. पंजाब का प्रमुख दैनिक 'हिन्दी मिलाप'—"भारती में एक प्रौढ़ कवि की झलक है और उनकी यह कविता पढ़कर कोई यह नहीं कह सकता कि यह उनका प्रथम काव्य संग्रह है⋯। "⋯'भारती' की काव्य-साधना जहाँ उसके मँजे विचारों से अर्पित हुई है, वहाँ उसकी शैली और भाषा का गठन भी उसकी आरती उतारता है।" [हिन्दी मिलाप १९।१।४१]

१८. विश्वविख्यात अर्थशास्त्रज्ञ तथा सागर विश्वविद्यालय के अर्थ-शास्त्र विभागाध्यक्ष डा० ऐल० सी० जैन—"⋯'निर्झर' के स्वच्छ उद्गम व प्रवाह में मैंने एक अनुपम कविता का रसस्वादन किया है। कविता में कितनी सरलता, कितना माधुर्य, कितना अनुभव है !⋯श्री रामकृष्ण 'भारती' सच्चे कवि हैं।"

१९. पंजाब विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा ओरिएन्टल कालेज के आचार्य स्वर्गीय श्री डा० लक्ष्मणस्वरूप एम० ए०, डी० *फिल*—'निर्झर' वास्तव में 'निर्झर' की तरावट और ताज़गी को लेकर निकला है। इसकी गद्य-पद्यमयी रचनाओं से प्यासे हृदयों को अपनी प्यास बुझाने के लिए काफी रस सामग्री मिलेगी।" [लाहौर १३।३।४१]

२०. *उत्तर भारत का हिन्दी साप्ताहिक 'विश्वबन्धु'*—"जगत की निर्ममता जितनी नंगी है, 'निर्झर' की रचनाएं भी उतनी ही

अनावृत्त हैं…। 'निर्झर' की कविताएं विभिन्न रुचि के पाठकों को सन्तुष्ट करेंगी और जिन्हें पढ़ने के व्यसन के साथ गुनगुनाने योग्य कण्ठ स्वर भी मिला है, वे इन रचनाओं में अधिक आनंद प्राप्त करेंगे।" [२६।१।४१]

२१. दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास का प्रमुखपत्र "हिन्दी प्रचार समाचार"—'निर्झर' भारतीजी की पद्यात्मक एवं गद्यात्मक भावनाओं का सञ्चय है। आपकी अभिव्यंजना शैली रुचिकर और स्पष्ट है। [मार्च १९४१]

२२. *पंजाब की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका "शान्ति"*—"पंजाब के इने-गिने साहित्यिकों में श्री रामकृष्ण 'भारती' का अपना विशेष स्थान है। सुयोग्य कवि ने कोमल से कोमल विषय में अपनी रसभरी लेखनी से केवल रस ही नहीं भरा, उसे सरल भाषा में इतनी सर्वसाधारण की वस्तु बना दिया है कि पढ़ते ही बनता है।" [फरवरी १९४१]

२३. *आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब का प्रधान मासिक 'आर्य जगत्'*—"निर्झर" में बहुत कुछ है…निर्झर कुछ आधुनिक मानव विचारों की अच्छी झांकी है।…पुस्तक संग्रहणीय है।"

२४. *डूंगर कालेज बीकानेर के संस्कृत विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री पं० विद्याधर एम० ए०*—मैंने आपके निर्झर को आद्योपान्त पढ़ा। इसके अनेक गीतों में एक विशेष चमत्कृति को अनुभव किया।…'निर्झर' में काव्य के समस्त गुणों का एक परम आशाजनक मनोहर विकास है।" [बीकानेर १६।१।४१]

२५. *डा० दशरथ शर्मा एम० ए०*—"साधारण कवि का यह काम नहीं कि वह मनोहारी स्वर, ललित शब्द-विन्यास एवं चित्ताकर्षक भावों का सुन्दर समन्वय कर सके। श्रीयुत् रामकृष्ण 'भारती' की कविता की यही विशेषता है कि उन्होंने एक आशापूर्ण सीमा तक इस दुष्कर कार्य को भी संभव बना दिया है...उनके कण्ठ में लोच, वाणी में शक्ति और हृदय में कवि सहज सहानुभूति है।" [बीकानेर-१९।१।४१]

२६. *हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार तथा कविवर श्री पं० उदय-शंकर 'भट्ट'* :—"निर्झर" की कविताओं में मुझे सौन्दर्य और रस दोनों ही मिले।... पीड़ा-चिन्तन में तो 'भारतीजी' का अपना वैशिष्ट्य भी है।...गद्यगीत तो उन्मुक्त अजस्र धारा की तरह हृदय में मिठास भर देते हैं।" [८।२।४१]

२७. *प्रसिद्ध कवि तथा नाटककार श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'*— "भारती जी के 'निर्झर' में मानव हृदय का स्वर है। इस स्वर में माधुर्य है और तारतम्य! जिस तरह प्रपात की धारा शिलाखण्ड पर गिरकर मोतियों की लड़ी बनाती है, उसी तरह 'भारती' जी की अनुभूति जगत के शिलाखण्ड पर गिरकर उद्गार-बिन्दुओं में छितर उठी है। इन बिखरे हुए कणों में चमक है।" [२६।१।४१]

२८. *पंजाबके प्रसिद्ध नाटककार और कवि श्रीउपेन्द्रनाथ 'अश्क'*— "निर्झर" मुझे मिला। आदि से अन्त तक मैंने उसे पढ़ा और मुझे उसमें बड़ा रस, प्रवाह तथा अनुभूति मिली। [९।३।४१]

२९. *प्रसिद्ध कहानी लेखक और आलोचक श्री पृथ्वीनाथ शर्मा* "आपकी कविता का रसास्वादन तो मैं कई बार कर चुका हूं, किन्तु आप इतने सरस गद्यकाव्य लिखते हैं, यह 'निर्झर' पढ़ने पर मालूम हुआ।...निस्सन्देह आपकी यह कृति कला की एक सुन्दर चीज है।" [१५।२।४१]

३०. 'करुण-सतसई' के यशस्वी लेखक स्व० श्रीरामेश्वर 'करुण'—
"आस्वादन कर अतुल तापसंताप-तपे मानव मन में।
'निर्झर' के सम झरझर झर से, भाव भरे नूतन तनमें।" [७।१।४१]

३१. आर्य प्रादेशिक सभा के भू० प्रधान तथा 'मिलाप' के भू० अध्यक्ष (श्री लाला खुशहालचन्द) श्री आनन्द स्वामी—
"कितनी सुन्दर कविताएं इस नन्हें से निर्झर में लिखी गई हैं! ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि ने अपना हृदय निकालकर इन कविताओं तथा गद्यगीतों में रख दिया है। कविताएं भावपूर्ण और मार्मिक हैं।" [२५।१।४१]

३२. आचार्य विश्वबन्धु एम० ए०—निर्झर का स्वागत करता हूं। यह वस्तुतः एक निर्झर सा ही है: इन हार्दिक वेदनायुक्त उल्लासों तथा उत्कट, कँटीली भावनाओं का, जिनका नानाविध विषमता तथा अन्याय-प्रेरित क्रूरता से अभिपीड़ित, वर्तमान मानव समाज में विचरते हुए एक नव यौवन कल्लोलित भावुक व्यक्ति के अन्दर पैदा होना स्वाभाविक है...।" [७।१०।१९९७]

३३. पंजाब सरकार के अर्थ विभाग के भूतपूर्व सहायक मंत्री राय साहब श्री लालचन्द—"निर्झर" की कविता सरल और भावमय है। गद्य भी काव्यमय और रुचिकर है।" [६।३।४१]

३४. बिहार के प्रसिद्ध हिन्दी लेखक श्री कामताप्रसाद सिंह 'काम'—"निर्झर की कविताएं सचमुच मेरे अन्तर को छू सकी हैं।" [भवानीपुर १।२।४१]

३५. मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध लेखक श्री श्रीराम शर्मा 'साहित्य रत्न'—'निर्झर' मुझे और मेरे मित्रों को बहुत पसन्द आया।" [अकोला (सी० पी०) --११।१।४१]

मूल्य ३) विशेष जानकारी व पुस्तक प्राप्ति के लिए लिखिए :

रेफिल आर्ट प्रेस, २१ बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता-७

प्रार्थना !

मिटाओ भव - बन्धन भगवान !
जगाओ जीवन - ज्योति महान !

नव आशा संचार करो अब,
मिट जाएँ भव - भार अभी सब,
खुल जाएँ सुख - द्वार सभी अब,

भव को स्वर्ग बनाओ फिर से, नवजीवन दो दान।
मिटाओ भव - बन्धन भगवान !

एक नया संसार बसाओ,
ऊँच - नीच का भेद मिटाओ,
शांति-सुखों का साज सजाओ,

विश्व - प्रेम का पाठ पढ़ाओ, सबका हो कल्याण।
मिटाओ भव - बन्धन भगवान !
जगाओ जीवन - ज्योति महान !

अपनी बात

सुनाऊँ क्या मैं अपनी बात ?
आग लगी है इस मानस में दूर रहो हे तात !
सुनोगे, तुम क्या मेरी बात ?

चोटें हैं कितनी इस दिल पर, इसका क्या अनुमान ?
कितने छाले पड़े हुए हैं, गिनना क्या आसान ?
समझो इतना, मन छलनी है, सह जग के आघात।
बताओ, और कहूं क्या तात ?

सच कहता हूं, झुलस उठोगे, मत आना इस ओर,
भड़क रही है भट्टी अन्दर, मचा हुआ है शोर।
जलते हैं अरमान यहाँ पर कितने ही दिन रात !
सुनाऊँ, और तुम्हें क्या बात ?

[लाहौर, अक्टूबर-३५]

निर्झर

निर्झर झर झर झरता है।

पत्थर का अन्तर गल - गल कर,
गीला करता जग का अन्तर,
निर्झर है पीड़ाओं का स्वर,
अग -जग में स्वर भरता है।
निर्झर झर झर झरता है।

चट्टानों पर विथर - विथर कर,
मुक्ताओं से प्रकृति - मांग भर,
बना सुहागिन उसे मनोहर,
यह अभिनन्दन करता है।
निर्झर झर झर झरता है।

इसमें सुख के गाने मुखरित,
इसमें दुख के गाने सञ्चित,
करके अपने प्राण प्रवाहित,
जग में जीवन भरता है।
निर्झर झर झर झरता है।

लाहौर, दिसम्बर, ४०]

लक्ष्य

चलते चलो पथिक, अपने पथ, तुमको विजय-पराजय से क्या ?
चलना ही है काम तुम्हारा,
चलता ही रहता जग सारा,
क्यों फिर तुमने साहस हारा ?
गहो निराशा का न सहारा,
अपनी राह बटोही, जाओ, तुमको जग के विनिमय से क्या ?
लक्ष्य तुम्हारा केवल करना,
तुमको फल से है क्या करना ?
केवल अविरत चलते रहना,
कष्टों पर कष्टों को सहना,
तभी सफलता पग चूमेगी, असफलता से तुमको भय क्या ?
सागर सम्मुख ठाठें मारे,
चाहे घिर आयें घन कारे,
चाहे टूटें नभ से तारे,
बिजली गिरे, प्रलय फुफकारे,
यात्री, यात्रा लक्ष्य तुम्हारा, तुम्हें दुःख- सुख - संचय से क्या ?

लाहौर, अक्टूबर, ४०]

●

दीपक

दीपक, तू हरदम जलता जा।
जलकर आलोकित कर जग को, दूर अँधेरे को करता जा।
दीपक, तू हरदम जलता जा।

जलना ही है काम दीप का,
सहना ही है काम दीप का,
इससे उज्ज्वल नाम दीप का,
तुझ पर शत-शत शलभ निछावर, उनकी स्मृतिमें तू जलता जा।
दीपक, तू हरदम जलता जा।

वायु भले तुझको कलपाए,
झञ्झा का झोंका झपकाए,
वर्षा तुझे बुझाने आए,
फिर भी मत कर्त्तव्य भुलाना, कण-कण जीवन बन बलता जा।
दीपक, तू हरदम जलता जा

लाहौर, सितम्बर, ४०]

सन्देश

यह जगत सारा तमाशा,
हम तमाशाई यहाँ के, है सभी को मधु - पिपासा।
ऐ मुसाफिर, सो रहा क्यों ?
स्वप्न में सब खो रहा क्यों ?
वेदनाएं ढो रहा क्यों ?
जाग, उठ, चल, है बुलाती, वह खड़ी उस ओर आशा।
किसलिए आँसू बहाता ?
किसलिए दामन छुड़ाता ?
व्यर्थ करुणा - गीत गाता,
छोड़ अपनी हठ हठीले, मुक्त कर निज हृदय - भाषा।
चल, कदम आगे बढ़ा रे,
कौन रुक-रुक कर चढ़ा रे ?
विघ्न किसके पथ अड़ा रे ?
भूधरों को रोंदनेवाली न पाई क्या दिलासा ?
उठ, हृदय में आग भर ले,
आग में अनुराग भर ले,
प्राण - कंप विहाग भर ले,
बिजलियों से खेलता चल, पीसता चल रे निराशा !
यह जगत सारा तमाशा ![1]

लाहौर, जनवरी, ४०]

---

१ लाहौर रेडियो स्टेशन से पठित।

उद्बोधन !

आज कैसी शुभ घड़ी है !

सब तरफ आनन्द छाया,
प्रकृति ने है सब सजाया,
नव - सुखद अनुराग छाया,
चाँद भी है, चाँदनी भी, बिजलियों की भी लड़ी है।

भूल सब अरमान राही !
दुःख का कर त्याग राही !
छल कपट की कर तबाही,
देख, उठ, आशा बुलाती, द्वार पर तेरे खड़ी है।

छोड़ बीता, सोच बाकी,
दीनता सी तज वराकी,
भूल जा गति भीरुता की,
सोच बाकी जिन्दगी को, क्या तुझे बीती पड़ी है।

स्नेह - सिंचित प्राण कर ले,
स्नेह का परित्राण कर ले,
स्नेह - रस का पान कर ले,
स्नेह से कर स्निग्ध जीवन, स्नेह जीवन की लड़ी है।

लाहौर, मई, ४०]

जीवन-सन्देश

जीवन सन्देश सुनाऊँ क्या ?
जीवन का है सन्देश यही कर्तव्य-मार्ग पर डटे रहो।
बाधाएँ आएँ कितनी ही, परवाह नहीं, बढ़ते जाओ।
बढ़ते जाना ही जीवन है, जीवन है संकट को तरना।
जीवन की राह निराली है, खोना ही इसमें पा जाना।
असफलता से व्याकुल होना, है काम नहीं नर - वीरों का।
शूलों को फूल समझकर ही, बढ़ते जाना क्रम धीरों का।
सन्देश यही है जीवन का, आजीवन हँसते ही रहना।
मरना भी हो, तो भी हँसना, कर्त्तव्य-मार्ग पर बलि होना।

●

विश्व-ज्योति चमके !

अँधकार, अज्ञान, निराशा, भय सब दूर भगे !
आस्तिकता, समता, शुचिता, मुदिता का भाव भरे,
निर्धनता, कटुता, नास्तिकता, भय का भूत भगे।
सत्य अहिंसा का प्रचार हो, शाँति-सुधासर से,
विश्व बंधुता और प्यार हो, परता दूर हटे !
हरा - भरा हो देश हमारा, सुख सौराज्य बने,
जाति - धर्म गत भेद न उपजे सम उत्साह मिले !
शठता, रोग हटे घर - घर से हिंसा भाव मिटे,
प्रेम - भावना, श्रद्धा उपजे मानवता चमके।
राष्ट्र - भारती गूंजे घर - घर भारत अमर रहे,
सब देशों में देश हमारा, उच्च महान बने !
विश्व ज्योति चमके ![1]

---

१ 'विश्व-ज्योति' मासिक के लिये मंगल कामना

मानवता का सम्मान करो !

मानवता का सम्मान करो !

मानव से दानव बन करके, मानव का मत अपमान करो।

सब ओर मचा है कलह शोर, सब ओर हुआ है रण निनाद,
भाई भाई का अरि बनकर, है आज खेलता मृत्यु फाग।
हिंसा की ज्वाला में जलकर, शत - शत निष्पाप मनुज मरते।
माताएँ हैं विधवा होती, बालक अनाथ हो रहे आज।
दानवता बढ़ती जाती है, मत मानव का अपमान करो।
है राम रहीम में झगड़ा क्या ? हिन्दू-मुस्लिम का फ़र्क़ है क्या ?
मस्ज़िद-मन्दिर में एक खुदा, उस ख़ालिक का कुछ ध्यान करो।
हिन्दी हम, भारत है सबका, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, हम सबका,
ईसाई, जैन, पारसी का, इसकी अखण्डता - त्राण करो।
यह ब्राह्मण है, यह हरिजन है, यह काफ़िर है, यह मोमिन है।
यह है धनाढ्य, यह निर्धन है, इन बातों का मत ध्यान करो।
शैतान नहीं बनना अच्छा, हैवान नहीं बनना अच्छा।
इन्सान कहीं बनना अच्छा, यदि देव नहीं, इन्सान बनो।

मानवता का सम्मान करो !

पहलगाम, २८-८-४६]

राही, पथ पर मुसकाता जा !

सुनकर जिसको जग झूम उठे, तू ऐसा राग सुनाता जा।
आँधी आए, तूफ़ान उठे,
ओले बरसें, अङ्गार पड़ें,
बादल गरजे, बिजली कड़के, तू अपना कदम बढ़ाता जा।
मस्ताने, पैर बढ़ाता चल,
तू डगर - डगर मुसकाता चल,
जग को तू राह दिखाता चल, सबको अनुराग सिखाता जा।
भव में वैषम्य भरा भारी,
'हा', 'हा' करती दुनिया हारी,
सन्तप्त हुई वसुधा सारी, तू साम्य - सुधा सरसाता जा।
आशा ही है तेरा सम्बल,
तू बाधाओं को कुचल मसल,
असफलता से संचित कर बल, शूलों को फूल बनाता जा।

सरदारशहर,
३१ जनवरी, १९४६]

●

मंज़िल तेरी दूर

सूरज वह डूबा जाता है,
तम नभ में घिरता आता है।
किन्तु मार्ग बढ़ता जाता है,
पैर हैं चकना चूर ॥

ऊबड़ - खाबड़ मार्ग कठिन है,
पथरीला है औ फिसलन है,
साहस से भरपूर यह मन है,
भाग्य हुआ है क्रूर ॥

आगे सघन भयंकर जंगल,
हिंस्र जन्तु हैं, मार्ग अमंगल,
साहस से कर इसे सुमंगल,
बन अपने में शूर ॥

परमेश्वर का नाम लिए चल,
शीघ्र- शीघ्र तू काम किए चल,
चलते ही रहना है, तो चल,
कायरता कर दूर ॥

पहलगाम २२-८-४६]

नाविक सोच समझकर चलना !

सागर की लहरें हैं चंचल, बढ़ आया तूफ़ान भयंकर,
नौका भी है जीर्ण शीर्णतर, अन्धकार छाया सागर पर,
मांझी मत अविवेकी बनना !

चट्टानी पथ, जल गहरा है, छाया चहूं ओर कुहरा है,
सभी ओर तम का पहरा है, है नभ ऊपर, अधर धरा है,
साथी संभल - संभल कर रहना ।

घबराने से अब क्या होगा ? होना है जो वह तो होगा,
भावी को किसने है रोका ? किसने जग में कल को देखा ?
वीर बहादुर, धैर्य न खोना !

मन चंचल है, अस्थिर रहता, उलझन में है डूबा रहता,
दुबिधा में है उलझा रहता, इत-उत पथ में मारा फिरता,
मन को अपने वश में करना, मन के वश में कभी न रहना,
नाविक सोच समझकर चलना !

●

ज्वाला अथवा हाला !

ज्वाला अथवा हाला !

मधुशाला मेरी में साथी, भर - भर पीलो प्याला,
भेद नहीं है ऊंच - नीच का, धनिक और निर्धन का,
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, यहां सभी हैं लाला ॥

मेरी मधुशाला में निशि दिन भीड़ लगी रहती है,
नहीं अपेक्षा विज्ञापन की, सब कहते हैं 'ला', 'ला' ॥
मेरी 'मधु' में ऐसी मस्ती, 'पी', 'पी' झूम रहे सब,
पण्डित, मुल्ला और पादरी, ग्रन्थी जपते माला ॥

मेरी मधुशाला का बन्धन, स्नेह - रज्जु सा दृढ़ है,
पी - पी कर मस्ती चढ़ जाती, गोरा हो या काला ॥
प्रेम, एकता, ममता ही है, मन्त्र यहां का प्यारा,
नहीं शत्रुता, द्वेष किसी से, धर्म यहाँ का प्याला ॥

मतवाला बनना ही जीवन, मस्त बने इठलाना,
दुख-सुख की चिन्ता करनी क्या, है दिमाग़ को ताला ॥
यहाँ न कोई राजनीति है, नहीं धर्म का नारा,
धर्म यहाँ का एक यही है, बनना बस मतवाला ॥

पूंजीवाद और सत्ता को तहस - नहस कर डाला,
बड़े - बड़े मंत्री, नेता भी पीते आकर हाला।
देश - प्रेम की मस्ती इसमें, वीरों का सा साहस,
आग भरी, अनुराग भरा है, प्यार भरी मधुशाला॥

साम्राज्यवादी थर्राए, नई चेतना जागी,
बनते हैं, विद्रोही पीकर, लाल गुलाबी हाला।
बड़े - बड़े सिंहासन डोले, राज्य-शक्तियाँ हिलती,
चिनगारी बन फूटा करतीं, हाला में है ज्वाला॥

यहां न कोई शासक, शासित, यहाँ न धन की माया,
छाया है नंदन - वन, साथी, यह मेरी मधुशाला॥
इसे पिया राणा प्रताप ने, मुगल वंश था डोला,
छत्रसाल, गुरु तेग बहादुर, मस्त हुए पी हाला॥

नाना, तांत्या टोपे, बन्दा, वीर शिवाजी जैसे,
पी - पी कर झूमे वे योद्धा, मधुशाला से हाला।
गुरुगोविन्द, रणजीतसिंह ने इसका स्वाद लिया था,
झांसी की रानी ने भी तो देखी यह मधुशाला॥

मतवाली मीरा इसको पी भूली जग की माया,
तुलसी, सूर, कबीरदास ने पिया यहाँ का प्याला॥
नानक, दादू, पलटू, धन्ना ने इसका यश गाया,
आलम, शेख़, ताज ने भी है चखी यहाँ की हाला॥

भगतसिंह भी झूम उठे थे, बने देश - सौदाई,
लालाजी का बदला लेने, पिया मधुर मधु प्याला ॥
राजगुरु, सुखदेव पधारे, मस्त हुए प्याले पर,
फांसी के तख्ते को चूमा, यह ऐसी मधुशाला ॥

पिया बाल[1] ने, लाल[2], पाल[3] ने, पी मस्ती में डूबे,
पथ बाधा से तनिक न डोले, पहन मुण्ड की माला ॥
ह्यूम, गोखले, दयानन्द, इस मधुशाला में आए,
देशोन्नति में प्राण लगाये, बाधा - संकट टाला ॥

बापू ने भी मस्ती पाकर, तल छट तक पी प्याला,
मधुशाला की मस्ती ऐसी, प्राण भेंट कर डाला ॥
धर्म, कर्म तो बहुत किया है, राजनीति खुल खेली,
साम, दाम भी हार गए हैं, सबको वश कर डाला ॥

पियो, पियो, पीते ही जाओ, पीना ही तो जीवन,
हमें बदलना है इस जग को, पीकर मधु का प्याला ॥
उथल - पुथल तो होनी ही है, जीर्ण रूढ़ियां बदलें,
बदल रहा है आज ज़माना, क्या गोरा; क्या काला ?

नाश और सत्यानाशों को, आग लगे, इस जग को,
जहां न कोई नंगा भूखा, फूटा विषम कसाला ।
एक नया जग हमें बसाना, जहां न ऊंचा - नीचा,
मधुशाला परिवार हमारा, चिन्ह हमारा प्याला ।

●

१—बालगङ्गाधर तिलक, २—लाला लाजपत राय, ३—विपिनचन्द्र पाल ।

जागरण-गीत

भारतवासी, जाग - जाग रे!
दूर भगा अज्ञान - निराशा आशा को तू बुला पास रे!
जाग कि जग में हुआ सवेरा,
सब जग जागा भगा अंधेरा,
तू करता है, रैन-बसेरा, फिर से जागृति सुना राग रे!
कब तक नींद पड़ा सोएगा?
अपना समय व्यर्थ खोएगा।
शूल फूल मिस क्यों बोएगा? जग को उज्ज्वल दिखा मार्ग रे!
प्राण - पोत अब डूब रहा है,
दुःखों से मन ऊब रहा है,
भोगों में तन खूब रहा है, शुक, पिक से तू बना काग रे!
जग में हाहाकार मची है,
बन्धु - बन्धु तकरार बढ़ी है,
पिता - पुत्र में रार हुआ है, ऐसे जग को लगा आग रे!
प्रेम - प्रीति का नशा पिला दे,
वैर-द्वेष का भूत भगा दे,
बन्धु-भाव एकत्व जगा दे, सिखा जगत् को फिर, अनुराग रे!
भारतवासी, जाग जाग रे!

सरदारशहर]

नाम-हीन !

मैं तुम्हें पुकारना चाहता हूं ! कैसे पुकारूँ ?
नाम लेकर ? सुना हो, तब न ?
सच बताओ, तुम्हारा नाम क्या है ?
मैंने तुम्हें जानना चाहा !
तुम्हारा परिचय चाहा !
मेरी इच्छा स्वप्नमात्र थी,
केवल इच्छा से क्या होता है ?
मैं तुम्हारा नाम तक न जानता था !
तुम्हारा पता और ठिकाना तो क्या !
तुम्हारे रूप से भी अनभिज्ञ था !
यह बात नहीं कि तुम्हें देखा न था,
जब देखा, सदा नये रूप में।
पूछना चाहा, पूछूँ कैसे ?
किससे ? कौन बताएगा ?
जिससे पूछता, टाल देता,
और हँस देता मुझ पर—
"दीवाने हो गए हो क्या ? कोई स्वप्न तो नहीं देखा ?"
तुमसे पूछूँ ? यही एकमात्र उपाय है,
कैसे पूछूँ ? यह एक समस्या है।
एक तो तुम दीखते ही कभी भी हो,

इस पर भी नए नए रूप में,
साथ ही बड़े वेग से आते हो, एक झोंके की तरह !
जब तक तुम्हें पहचान पाता हूं,
तुम छिप जाते हो,
किसी तरह पहचान भी लूँ,
तो ठहराऊँ कैसे ? पुकारूँ क्या कहकर ?
किस शब्द से तुम्हें सम्बोधित करूँ ?
सच बताओ ? क्या नाम है तुम्हारा ?
तुम्हें किस नाम से पुकारूँ, हे नामहीन ?
लाहौर, जनवरी, ३८]

प्रार्थना

जब मैं संसार के झगड़ों में खूब जकड़ जाता हूं, उनमें फँस जाता हूं, कि उनसे पार पाना कठिन हो जाता है, तो मुझे तुम्हारी याद आती है और मैं अपने किए पर पछताने के साथ तुमसे शान्ति की याचना करता हूं, उससे मुझे शान्ति मिलती है।

जब मैं अपने निकटतम बन्धुओंके चिरवियोग से अत्यधिक दुखी हो जाता हूँ, संसार आँखों में चुभने लगता है, सब पराए ही पराए प्रतीत होते हैं, तब मुझे तुम्हीं एकमात्र अपने प्रतीत होते हो, जिसका दामन पकड़कर मैं शान्ति प्राप्त कर सकूँ,

जिसकी प्रार्थना से मैं अपनी जीवन-यात्रा शान्ति से चला सकूँ। इसी विश्वास से मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ और तुम्हें ही अपना सब कुछ समझता हूँ।

जब शत्रु मुझ पर धावा बोलता है और मेरा अवलम्ब कुछ नहीं होता, तब मैं तुम्हारे ही आश्रय पर, तुम्हारे सहारे पर, अकेले होते हुए भी उसका मुकाबला करता हूँ, और तुमसे प्रार्थना करता हूं विजय-प्राप्ति की।

जब नदी में तूफ़ान होता है और मुझे 'उस-पार' जाना होता है, तब तुम्हारे बल पर मैं अपनी नौका निश्चिन्त होकर नदी में डाल देता हूं और प्रार्थना करता हूं तुमसे तूफ़ान शान्त कर देने की और मुझे पार पहुंचाने की।

तुम्हारी प्रार्थना मेरे लिए, राक्षसों के हनन के लिए देवताओं का अमृत है, ऋषि और मुनियों के लिए स्थायी आनन्द और शान्ति है।

तुम्हारी प्रार्थना ही मेरा जीवन है, प्राण है, शक्ति है।

लाहौर, दिसम्बर, ३८]

तुम्हारी धरोहर

मैं तुम्हारी धरोहर की रक्षा करता हूं, दिन रात, सायं-प्रातः;
लोग उसे मेरा कहते हैं, किन्तु ममत्व कैसा ?
जब सब कुछ अर्पण कर चुका, तब ममता कैसी ?
अपनापन कैसा ?
वह तो तुम्हारी ही वस्तु है !
मुझ पर केवल उसकी रक्षा का भार है !
मैं उसका रखवाला मात्र हूं,
कोई आकर उसे ले न जाए—
उसे किसी प्रकार की हानि न पहुंचे—
इसीलिए मैं उसकी रक्षा करता हूं !
तन से, मन से, धन से !

× × ×

मेरी परीक्षा मत लो, मैं इस योग्य नहीं !
बहुत दुर्बल हूं !
मुझमें इतना बल नहीं कि इसकी रक्षा कर सकूँ,
विवश हूं, सद्-असद् का विवेक भूल बैठा हूं !
कहीं ऐसा न हो, तुम्हारी धरोहर मुझसे छिन जाए !
मुझे अयोग्य समझकर, कायर समझकर,
कोई इसे हथिया न ले, मेरी आँखों में धूल झोंककर,
इसलिए तुमसे विनती करता हूं,
देव, इसे ले लो, अपना लो !
त्वदीयं वस्तु गोविंद! तुभ्यमेव समर्पये ।

लाहौर, सितम्बर, ३८]

'नहीं'

'नहीं' में संसार का गहन इतिहास छिपा है। विचित्रता से भरी है इसकी कहानी।

सृष्टि के आदि में आदम को स्वर्ग के उद्यान में छोड़कर कहा गया—"इस उद्यान में रहकर सब फलों का स्वाद ले सकते हो, किन्तु 'अमुक' का नहीं।"

पर हुआ क्या ? आदम ने उस 'नहीं' का उल्लंघन किया और इस संसार में सभ्यता का श्रीगणेश हुआ।

माता ने बालक को आग के पास बैठे देखकर कहा—

"नन्हे ! आग से दूर रह, हाथ और कपड़े बचाकर रख,ब कहीं आग न लग जाय।"

नन्हे ने माँ की इस 'नहीं' आशङ्का की उपेक्षा की; और उसका हाथ झुलस ही तो गया !

राम ने श्याम से कहा—'देखो श्यामू! तुम्हें तैरना नहीं आता, जरा बचकर और तट के पास ही नहाना। दूर पानी गहरा है। मैं अभी आता हूं। जल्दी नहा ले।"

श्याम ने अपने बड़े भाई के 'नहीं' की खिल्ली उड़ाई। लड़कपन के जोश में सब भूल गया। लहर के थपेड़े में दूर तक बह गया। थोड़ी देर के बाद राम ने श्याम को वहां न देख कर बहुत खोज कराई, किन्तु सब व्यर्थ हुआ। दूसरे दिन राम को उसकी लाश ही मिल सकी।

संसार का आदि 'नहीं' से है।

'हाँ' और 'नहीं' इन दोनों शब्दों में अन्योऽन्याश्रित सम्बन्ध है। इस 'नहीं' में ही संसार का अन्तर्भाव है!

इस 'नहीं' में वह आनन्द छिपा है, जो 'हाँ' में भी व्यक्त नहीं किया जा सकता। वस्तुतः नहीं, के बिना 'हाँ' की सत्ता असम्भव है।

सचमुच 'नहीं' में संसार का गहन इतिहास छिपा है।

लाहौर, फरवरी ३८]

●

तूफ़ान की वेला

चारों ओर शोर मच रहा है।

आकाश पर घनघोर घटाएँ छा रही हैं।

सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार है।

हाथ को हाथ नहीं सूझता।

जहाज़ अपनी तीव्र गति से चलता जा रहा है।

दिल मसोसे यात्री बैठे हुए हैं—मङ्गलकामना कर रहे हैं-

किन्तु, होनी को कौन टाल सकता है ?

सेनापति ने सचेत किया—"तूफ़ान उठ रहा है!"

यात्री तूफ़ान का नाम सुनकर चौंक पड़े।

कुत्ते को देखकर बिल्ली की तरह,

बिल्ली को देखकर चूहे की तरह,

सिपाही को देखकर चोर की तरह,
सबके सब किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए, एकदम सन्न हो गए-
काटो तो ख़ून नहीं—
सब अपनी - अपनी चिल्लाने लगे—
"मुझे बचाओ, मुझे बचाओ"
इसी शोर में एक बार फिर सुनाई दिया :—
"तूफ़ान उठ रहा है !"
तूफ़ान की वेला है—तूफ़ान आ पहुंचा है !
लहरें आकाश को चूमने चल दी हैं—
जहाज़ में पानी भर रहा है—
यात्रियों की आँखों के आगे अँधेरा छाया है !
वे जीना चाहते हैं, किन्तु,
मृत्यु की विभीषिका सामने उपस्थित है।
बचाव का कोई मार्ग नहीं दीखता।
जहाज़ में पानी भर गया, वह डगमगाने लगा—
यात्रियों ने चुपचाप निराशा के सामने आत्म-समर्पण
कर दिया।
तूफ़ान की वेला सचमुच भयंकर है !
लाहौर, जनवरी, ३८]

सुन्दरतम हे !

हे सुन्दरतम, मैं तुम्हारा चित्र उतारना चाहता हूं,
मुझे अपना चित्र खींच लेने दो ज़रा,
इधर - उधर मत देखो—देखो केवल इस ओर—
कहीं ऐसा न हो, तुम हिलो और चित्र बिगड़ जाए !
सावधान, तूलिका चलती है !
यह क्या ? यह चकाचौंध कैसी ? ज्योति - पुँज कैसा ?
अपने सौन्दर्य को संयत रहने दो, देखते नहीं बनता !
तुम्हारा चित्र कैसे उतारूं ? आँखें चौंधिया जाती हैं,
तूलिका कम्पित हो जाती है, हाथ हिलने लगता है !
मैंने इन हाथों से बहुत से चित्र खींचे,
राजा - महाराजाओं के - रानियों और अप्सराओं के—
चित्र खींचते - खींचते उमर बीत गई,
अब तो जीवन - संध्या है।
अपनी आयुमें यह पहला अवसर है, जब मैं असफल होरहा हूं;
मेरी असफलता पर क्यों हँसते हो ? मेरी परीक्षा न लो !
सचमुच मैंने धृष्टता की, तुम्हारा चित्र खींचना चाहा !
न मालूम, किस कारीगर ने यह चित्र खींचा ?
हे सुन्दरतम ! मुझे क्षमा करो।

लाहौर, फरवरी, ३८]

●

उस पार

समय हो गया है, और मुझे 'उस - पार' जाना है;
'उस - पार' मेरे प्रियतम का निवास है।
प्रियतम मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे!
माँझी! मुझे उस पार ले चलो—देखते हो—'उस - पार'!
मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूं—मुझे उस पार ले चलो!
दिन ढल रहा है और सामने है अगाध जल,
सुदूर प्रदेश तक पानी ही पानी नज़र आता है।
कल्लोलिनी उल्लास के शुभ्र वक्षस्थल पर अपने हृदय—
उड़ेलने चल दी है, लहरें आकाश की निस्तब्ध - मूक - नीरव
आशा को पीने चली हैं, मेरे ही चरणों की रज अपने
सिर पर उठाने, मेरे ही स्वागत के लिए!
नाविक! समय हो गया है और मुझे उस पार जाना है।
माँझी, लँगर खोलो और बहने दो नौका,
बस दोनों हाथों से खेते चलो, खेवनहार!
'इस - पार' को भूलकर 'उस - पार' की ओर देखो,
दुनिया की आँखें तुम्हारी ही ओर देख रही हैं, और—
मूक संकेत से कह रही हैं 'उस-पार' माँझी! केवल, उस पार!

लाहौर, अप्रैल, ३८]

●

न्याय की भीख

देव ! आज मैं तुम्हारे दरबार में न्याय की भीख माँगने आया हूं, क्योंकि अब केवल यही दरबार है, जहाँ मुझे न्याय की आशा है।

जो लोग इतने स्वार्थी और पक्षपाती हों कि यथार्थ बात कौन सी है, यह आँखें खोलकर भी नहीं देखना चाहते, उनसे न्याय की आशा रखना अपनी मूर्खता का परिचय देना है।

जो लोग साम्प्रदायिकता के शिकंजे में ऐसे फँसे हों, उसमें जकड़े हुए दूसरों को जकड़ना ही अपनी महत्ता का परिचय देना समझते हों, उनसे न्याय की आशा करना अपने आपको साम्प्रदायिकता के दूषित वातावरण में प्रविष्ट करना है, अपने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य तथा निजी स्वत्वाधिकारों को खोना है, और कुछ नहीं।

जो लोग अविद्यान्धकार में लिप्त हुए ऐसे अविवेकी हो गए हों कि अपने पड़ोसी के बल को किसी प्रकार क्षीण कर देना ही अपने बलवान होने का श्रेष्ठ उपाय समझते हों, तथा किसी को उपकार करते देख उस पर किसी स्वार्थ का सन्देह किए बिना न रह सकते हों, उनसे न्याय की आशा रखना अपने को उनकी दृष्टि में गिराना है।

जो लोग इतने अधिक विद्वान् हों कि किसी अन्य की कीर्ति को सुनते ही जिनके रौंगटे खड़े हो जाते हों, जिनकी

आँखें जलन से लाल और घूर्णित हुए बिना न रह सकती हों, उनसे न्याय की आशा रखना उनकी कीर्ति को खतरे में डालना है।

जो लोग दिन-रात ग़रीबों का ख़ून चूस-चूस कर और रिश्वत की भेंटों से अपना पेट मोटा किए हों, उनसे न्याय की आशा रखना अपने आपको मुँड़वाना और लुटाना ही है, और कुछ नहीं।

इसलिए देव, मैं तुम्हारे ही चरणों में न्याय की भीख मांगने आया हूं।

लाहौर, अक्टूबर, ३५]

पत्रकार

इस अन्धकारावृत्त रात्रिके समय, जब सब लम्बी तानें सो रहे हैं—दिन भर के थके हुए कुछ सुस्ता रहे हैं, मैं जाग रहा हूं, क्योंकि मुझे उनके लिए सुबह उठते ही ताज़ी ख़बरें नाश्ते के रूप में देनी हैं।

मेरे जागने का मूल्य कितना सस्ता है? लोग इसको न परखकर मुझ पर दया करके कुछ पैसे दे देते हैं। कितनी मूल्यवान है रात्रि? उन्हें क्या मालूम कि मुझे न सोने लिए कितनी बार और भांति-भांति के कैसे उपचार करने पड़ते हैं,

अपने दिल पर काबू पाना होता है और इच्छाओं को स्वाह कर देना पड़ता है !

—और—प्रातःकाल, जब वे ब्राह्म-मुहूर्त्त में अपने बिस्तरों से निकलकर मन्द-मन्द मलय-समीर से अपने को प्रफुल्लित करते हैं, तब मुझे उसी समय रजाई से लिपटना पड़ता है, क्योंकि रात भर जागते-जागते आँखें पक गई होती हैं। कैसी विडम्बना है ? मुझे इस समयका समीर भी नहीं लुभा सकता ! मुझे अपनी इच्छाओं को दूसरों की सुविधा पर बलि देना पड़ता है।

लाहौर, सितम्बर, १९३५]

●

जाने दो

रानी, मुझे मत रोको, जाने दो !
नगर भर में एक ही हँस रहा है—भय !
नगर भर में एक ही रो रही है—प्रजा !
देखती हो, शत्रु ने नगर पर धावा बोल दिया है,
युद्ध का नाद गूँज रहा है,
सब ओर विपत्ति है, डर है, त्रास है !
आज मैं बोलूंगा और खूब बोलूंगा !
सब मेरी आज्ञा की ही प्रतीक्षा में हैं,
कह नहीं सकता, क्या बोलूंगा ? कितना बोलूंगा ?

किन्तु, देखता हूं मुझे बोलना ही पड़ेगा !
मुझे जाने दो, जाना ही है, देवि ! मुझे जाने दो ।
प्रेयसि ! अकेला ही आया हूं, शायद अकेले ही जाना होगा,
बीच में जाते - जाते तुम्हारा स्निग्ध, मधुर, पीयूषवर्षी—
स्वर सुन पड़ा; ठहर गया, सुस्ताया—
आनन्द की लहरों ने थपकाकर मुझे बेहोश कर दिया,
किन्तु, आज मैं सुनता हूं, उधर से मुझे कोई बुला रहा है,
न मालूम कौन है ? कर्त्तव्य ही होगा ।
बस अब जा रहा हूं, जाऊं ? जाने दो, मुझे मत रोको !
लाहौर, जनवरी, ३८]

●

नूरजहां की क़ब्र पर

जीवन की छाया इतनी काली होती है !
स्वर्ग इतने रीते हो जाते हैं !
वैभव इतना पीला पड़ जाता है !
हृदय इतना ठण्डा हो जाता है !
महत्त्वाकांक्षाएं इतनी निस्पन्द और नीरव हो जाती हैं !
यह सब मैंने कहां देखा है ?

आकाश के छत्ते में अपने-अपने घरौंदे बना-बनाकर रहने वाले मनुष्य क्या इस तरह निराशा के दामन में मुंह छिपाकर सो जाते हैं—हमेशा के लिए ?

जहाँ संसार सूना होकर अपने हृदय को अपनी आंखों में छिपा लेता है।

अपनी उमंगों को थपथपाकर सुलाने का यत्न करता है !

क्या वे नीरव और सुप्त क्षण नूरजहाँ, तुम्हारी मुसाफित में नहीं मिल पाते ?

मैं देख रहा हूं, आज तुम्हारी हजारों कहानियाँ,
तुम्हारे शरीर की चेष्टाओं के साथ—
समुद्र के ज्वार की तरह उठनेवाली—और—
भाटे की तरह उसमें समाई हुई दीखती है !
तू बीते वैभव की एकमात्र स्मृति है,
हरियाले चमन की तोड़ी हुई एक कली है,
खिले हुए फूल का मुरझाया और अलसाया रूप है !
गुजरे वसन्त की मधुर और न भुलाई जानेवाली याद है।
निष्ठुर पतझड़ ने तेरी यह दुर्दशा कर दी है !
इसे दैव का प्रकोप कहूं या बीते वैभव की याद ?
विश्वास नहीं होता, लेकिन करना ही पड़ता है—
कुछ तो बतलाओ, साम्राज्ञि !

जिस उपवन में सदैव कोयलें कूकती थीं, आज वहां उल्लुओं ने क्यों डेरा लगाया है ?

जहाँ दिन - रात मैना मधुर बोल बोलती थीं, आज वहां कौए क्यों मण्डरा रहे हैं ?

जहाँ सारस अपने हृदय की और शरीर की सफेदी से—

तुम्हारे उल्लास को धो - धो कर उसे वेगवान बना देते थे,

अब वहां गिद्ध मांस के एक-एक टुकड़े के लिए अपने समाज के नियमों में क्यों परिवर्तन कर रहे हैं ?

मेहरुन्निसा ! सच बता, क्या यह भी तो तेरा मान तो नहीं ?

सारा जीवन सुख-स्वप्नों में बिताकर क्या यह स्वयं लिया वैराग्य तो नहीं ?

नूरजहां ! सच बता, जरा मुंह तो खोल,
तेरी कब्र पर लोग खड़े रो रहे हैं !

लाहौर, मई, ३८]

कब आओगे ?

देव, जीवन दूभर हो गया है !
एक - एक क्षण दिन के समान बीतता है,
दिन वर्ष की तरह और—वर्ष युग की भांति !
प्राण विरह में झुलस रहे हैं !
सुध - बुध खो गई है,
केवल तुम्हारे दर्शन के लिए साँस चल रहे हैं !
रूठे स्वामी ! अब तो बताओ, कब आओगे ?
प्रस्थान - वेला समीप आ रही है,
संसार भर से विदा ले ली है !
सबके अन्तिम दर्शन कर लिए हैं,

बन्धु - बांधव पटाक्षेप की प्रतीक्षा में हैं,
आँखें निस्पन्द हैं,
होंठ फड़क रहे हैं—अस्पष्ट ध्वनि से—
"प्रिय ! एक बार ! बस एक बार - कब आओगे ?"
लाहौर, अप्रैल, ३८]

●

ऐसा क्यों ?

एक ही पिता की सन्तान में इतना अन्तर क्यों ?

एक नरम गद्दे पर सोए और दूसरा नंगी जमीन पर ठुठराया करे !

एक पालकियों पर चढ़कर निकले और दूसरा उन्हीं पालकियों को उठाए !

एक चुपड़ी खाने में भी अपमान समझे और दूसरे को रूखी भी न नसीब हो !

एक के कुत्तों को ठूंस - ठूँस कर खिलाया जाय और दूसरा भूखे पेट ही सोए !

एक के घर खस की टट्टियाँ लगी हों और दूसरा कड़कती धूप में हल चलाए !

एक के घर वैभव के कोठे भरे हों और दूसरे की आवश्यकता भी पूरी न हो !

एक तोंद फुलाए ऐश लूटे, और दूसरा दिन भर परिश्रम करके भी तृप्त न हो!

एक की आज्ञा पर दिन भी रात बन जाए, और दूसरे का सच भी अविश्वसनीय हो!

एक मच्छरदानियाँ लगाये, और दूसरे को फटी चादर भी नसीब न हो!

आखिर ऐसी विषमता और अनर्थ क्यों?

लाहौर, अगस्त, ३८]

●

बन्धन और मुक्ति

वस्तुतः बन्धन और मुक्ति-ये दोनों शब्द सापेक्ष हैं।
संसार में इनका अन्योऽन्याश्रित सम्बन्ध है, सुख और दुःख की भाँति।
'बन्धन के अभाव में मुक्ति और मुक्ति के अभाव में बन्धन'—
यह केवल लिखने और पढ़ने की परिभाषा है,
इन दोनों में वस्तुतः विरोध नहीं, विरोधाभास है।
मुक्ति में भी बन्धन है एक प्रकार का;
जिसके बिना बन्धन की मर्यादा उच्छृङ्खल हो उठती है।
बन्धन में भी एक प्रकार की मुक्ति है;
इसमें इतना आनन्द है, जो स्वयं मुक्ति में भी नहीं।

जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं—
उनकी सहायता सारा जग करता है—स्वयं प्रभु—
ऐसे व्यक्ति बन्धन में रहते हुए भी मुक्त हैं,
संसार में जीवन - यात्रा चलाते हुए जीवन-मुक्त की भाँति
वस्तुतः बन्धन और मुक्ति-ये दोनों शब्द सापेक्ष हैं।

लाहौर, फ़रवरी, ३८]

अभिमान

अभिमान का फल पतन है!
मनुष्य ज्यों - ज्यों अभिमान करता है—त्यों-त्यों वह पतन की ओर स्खलित हो जाता है
गेंद जितनी गति से ऊपर उछलता है, उसी तेज़ी से नीचे आता है
जल का तेज़ फ़व्वारा जितने अधिक वेग से
ऊपर की ओर जाता है, उतने ही वेग से नीचे
आ पड़ता है।
समुद्र की लहरें जितने अभिमान से उमड़ती हैं,
उतनी ही शीघ्र उन्हें पीछे की ओर जाना पड़ता है,
किनारे से टकरा कर!
दूध उबलकर जितना ही अधिक उभरता है,
उतना ही अधिक वह बाहर निकल कर नीचे
गिरने लगता है।
वस्तुतः अभिमान का फल पतन है।

लाहौर, अप्रेल, ३८]

क्रीड़ा-स्थल

यह संसार एक क्रीड़ा-स्थल है !
अनेक प्रकार के खिलाड़ी आते हैं इसमें,
भाँति - भाँति की क्रीड़ाएँ करते हैं वे,
कोई दौड़ता है—अपने पूरे बल के साथ,
किन्तु भार होने के कारण दौड़ नहीं पाता,
और थक कर बैठ जाता है, हिम्मत हार कर !
दूसरा आता है और अनेक प्रकार के खेल दिखलाता है,
अपने खेलों से लोगों को प्रसन्न करता है,
दुनिया उसके खेलों से ऊबती ही नहीं !
वह स्वयं थक जाता है, किंतु लोग मानते ही नहीं,
उसे खेल दिखलाना ही पड़ता है—विवश होकर,
अपनी थकावट की परवाह न करके—
तीसरा आता है और वह खेल दिखाने के स्थान पर
किसी खिलाड़ी के खेल पर ही ऐसा रीझ जाता है—
कि सब अपनापन भूल जाता है—स्वयं को खो बैठता है ।
सचमुच यह संसार क्रीड़ा - स्थल है !
एक और खिलाड़ी है—वह आता तो है खेल दिखाने,
किन्तु खेलने के स्थान पर वह रोने लगता है;
न मालूम, क्यों ?
और, सारा संसार उसके साथ ही रोने लगता है,

लोग भूल जाते हैं कि वे खेल देखने आए हैं,
रोना सुनने और स्वयं रोने के लिए नहीं !
एकाएक वह खिलाड़ी हँस देता है—न मालूम क्यों ?
और, दर्शक भी हँस देते हैं खिलखिला कर !
आँखों में आँसू हैं सब के, किंतु वे हँस रहे हैं !
क्या तमाशा है—कोई समझ नहीं पाता !
सचमुच यह संसार रंग-स्थली है, क्रीड़ा-स्थल है !
भाँति - भाँति के नट आते हैं,
अपने - अपने खेल दिखाते हैं,
कुछ हँसते हैं,
कुछ रोते हैं,
वस्तुतः दुनिया एक तमाशा है !
लाहौर, जून, १९३८]

साधना का पुरस्कार

पकते फल हैं और उनका भार उठाते हैं वृक्ष—
और उस भार से झुक जाते हैं वे !
सब फल की स्तुति करते हैं—वृक्ष को कोई नहीं पूछता !
नदियाँ जल से भरी रहती हैं,
उनके जल से लोग अपनी पिपासा शान्त करते हैं,
लोग जल की स्तुति करते हैं—'जल बड़ा मीठा है !'
और चुपचाप चल देते हैं वे,
नदी को कोई दाद नहीं देता !

बादल बरसते हैं, वर्षा होती है !
हरी - हरी खेती लहलहाने लगती है !
किसान उसे देखकर फूले नहीं समाते,
किन्तु, उस खेती को बादल नहीं खाते !
चकवा - चकवी संसार को बताते हैं—
कि मिलन के साथ वियोग भी है,
—दिन के साथ रजनी की भाँति—
उनको साधना की दाद कितने देते हैं ?
किसान दिन - रात खेती में परिश्रम करता है,
रात - दिन हल जोतता है—
ऊजड़ को उर्वरा बनाता है !
मेघराज अकारण रुष्ट होकर ओलों की वृष्टि कर देते हैं !
यही है साधना का पुरस्कार !
लाहौर, नवम्बर, ३८]

●

भूल

जब एक राजा घमण्ड से चूर होकर प्रजा पर अनियन्त्रित अत्याचार करने लगता है और किसी की परवाह नहीं करता तब उसके कान में एक आवाज़ आती है—

"राजन्! भूलते हो, तुम से भी ऊपर कोई हिसाब लेने वाला है।"

राजा उस समय तो अभिमान में कुछ भी नहीं सोचता, किन्तु बाद में उसे अपनी भूल पर पश्चाताप करना पड़ता है !

जब ज़मींदार के मुंशी ग़रीब किसान से लगान वसूल करने के लिए उसका सब माल निर्दयता से कुर्क करते हुए कहते हैं—

"देखें, यह आगे कैसे लगान नहीं चुकाता ?" तब धीरे से एक ध्वनि उनके कानों में गूंजती है—

"ग़रीब को सताकर किसी को सुखी होते नहीं देखा।" मुंशी उस समय तो मूंछों पर ताव देते हुए कुछ ध्यान नहीं करते, किन्तु एक दिन इस भूल के कारण उन्हें पछताना ही पड़ता है।

जब चोर चोरी करता है, तब उसे बड़ा घमंड होता है और अपने साहस के बल पर वह न जाने कितने अत्याचार करता है ? किन्तु जब वह पकड़ा जाता है तब उसे अपनी भूल और अपराध के लिए दंड भोगना पड़ता है—पश्चाताप के रूप में।

संसार में इस प्रकार के कई भूल-कांड होते हैं, किन्तु उनकी दो श्रेणियाँ हैं। कुछ भूलें जान बूझकर की जाती हैं और कुछ बिना जाने। दंड सबको मिलता है—एक को भूल करने का—और दूसरे को अपने अज्ञान का।

वह द्रष्टा इस प्रकार के भुलक्कड़ों पर थोड़ा सा हँस देता है।

लाहौर, अगस्त, ३८]

●

अपना और पराया

कितना भेद भरा है इन दोनों शब्दों में ?
मैं तन - मन - धन से अपने घर की रक्षा करता हूँ,
उसको स्वच्छ रखने का प्रयत्न करता रहता हूँ,
अनवरत उसे सजाने की कोशिश करता रहता हूँ,
उसे विविध सामग्रियों से भरने का प्रयत्न करता हूँ।
दूसरों के घर में कोई नई वस्तु मुझे दीखती है,
तो मेरी भी इच्छा होती है, उसे अपने लिए प्राप्त कर लेने की।
जब कोई मेरी वस्तु की प्रशंसा करता है—
मैं अभिमान और सन्तोष से फूला नहीं समाता।
यदि किसी से अपने पड़ौसी की प्रशंसा सुन लेता हूँ,
मेरा रोम - रोम जल उठता है।
न मालूम क्यों ?
यदि मैं एक अच्छा काम कर लेता हूँ —
तो सारे संसार में उसका बखान करता फिरता हूँ,
लोगों से प्रशंसा की आशा करता हूँ,
किन्तु दूसरों को अच्छा काम करते देखकर भी
उसके दोष निकालने की कोशिश करता हूँ —
ऐसा न हो कि कोई उसकी प्रशंसा कर दे !
कभी रात को सोते - सोते आहट पाकर जाग उठता हूँ,
तो 'चोर - चोर' चिल्लाकर पड़ौसियों को—
अपने घर पर इकट्ठा कर लेता हूँ

बिना इस बात का निश्चय किए कि चोर है भी या नहीं,
किन्तु, जब मैं रात्रि के निबिड़ अन्धकार में—
जब हाथ को हाथ नहीं सूझता—
चिल्लाहट सुनता हूँ, तो नींद न आने पर भी उस समय
चुपचाप अपनी प्रसन्नता को दबाए—
कल्पनाओं में विचरण करने लगता हूँ,
और मन ही मन प्रसन्न होता हूँ, उसको लुटते देखकर,
न मालूम क्यों ?
यदि मेरा लड़का बीमार हो जाए, तो मैं
सबके पास दौड़ - दौड़कर सहायता माँगता हूँ—
सबसे उपाय पूछता हूँ, उसके निराकरण के—उपचार के—
सब से सहानुभूति की आशा रखता हूँ—
किन्तु, पड़ौस में जब कोई बीमार पड़ जाता है—
तब मैं सहानुभूति तो क्या, कई बार नुकताचीनी करने
लगता हूँ—
"रोगी को यहाँ रखने से बीमारी फैलने का भय है"।
कई बार मरीज़ के मरने से मुझे प्रसन्नता और शान्ति
मिलती है।
यही अन्तर है अपने और पराए में !
क्वेटा, सितम्बर, ३८]

●

रूठे स्वामी !

रूठे स्वामी, मान जाओ, मानना ही पड़ेगा ?
किससे अपराध बन पड़ा है देव ?
किस पर क्षोभ है ऐसा, नाथ ?
यह भृकुटि क्यों तानी है प्रभो ?
यह भ्रू-भंग और रोष किसलिए, प्रिय ?
यह तीसरा नेत्र मत खोलो, स्वामी !
रूठे हृदयेश, मान जाओ, मानना ही पड़ेगा !
नगर में वसन्तोत्सव मनाया जा रहा है !
सब ओर अनंग की आराधना हो रही है !
ललनाएँ पूजा के फूल बीन रही हैं,
सखियाँ झूले झूल रही हैं।
मुझे भी पूजा करने जाना है—किन्तु,
तुम्हारे बिना पूजा ? तुम्हीं तो मेरी पूजा हो।
आओ, मैं तुम्हारी पूजा करूँ,
हृदय से, मन से, वाणी से, शरीर से और—
रोम - रोम से-तुम्हारी पूजा करूँ—तुम्हीं तो पूजा हो !
रूठे नाथ, मान जाओ, मानना ही पड़ेगा !

लाहौर, मई, १९४०]

●

आशंका

तुम्हें फूल बीनते हुए देखकर मुझे आशङ्का होने लगती है—कहीं काँटा न लग जाए!

तुम्हारे प्रेम की गम्भीरता को देखकर मैं मतवाला हो उठता हूँ, किन्तु कभी-कभी यह आशङ्का होती है, कि मिलन के अनन्तर कहीं वियोग का दुःख न उठाना पड़े, जिसका सहना हमारे लिए असम्भव है।

तुम फूल से इसीलिए प्रेम करती हो न, कि वह सुन्दर है! उसकी सुन्दरता की तुम उसे यह दाद देती हो कि उसे तोड़ लेती हो। दूसरे दिन जब वह कुम्हला जाता है, तो तुम उसे फेंक देती हो।

तुम्हारी लीला देखकर मुझे यह आशङ्का होने लगती है कि कहीं संसार में सुन्दरता का ऐसा निरादर न होने लगे।

जब मैना बोलने लगती है, तो उसकी मीठी और स्पष्ट स्वर-लहरी पर सारा संसार रीझने लगता है—मैं भी और तुम भी—किंतु साथ ही यह आशङ्का भी होती है कि यही मधुर बोली उसको पिंजड़े में बन्द कर देने का कारण न बने। क्या ही अच्छा होता कि वह बोलते समय इस परिणाम को जान लेती।

जब तुमसे मिलने को प्रस्तुत होता हूँ, तब मुझे न जाने क्यों डर लगता है कि कहीं इसका अन्त वियोग न हो। इससे घबरा उठता हूँ।

सहसा मुझे चक्रवाक-दम्पत्ति की स्मृति हो आती है।

जब मैं दिन भर के कामों से थककर शय्या पर लेटता हूँ और तुम्हारे सुखद स्वप्नों का आनन्द ले रहा होता हूँ तब न जाने क्यों मुझे आशङ्का हो उठती है कि इस आनन्द के अन्त में कहीं इस स्मृति की चिन्ता भी न छिपी हो।

लाहौर, अप्रेल, ३८]

यात्री !

उदास क्यों हो यात्री ?

इतनी दूर निकल आए, इसलिए ? इसमें उदासी की क्या बात है ? आज न निकलते, तो कल निकलते ही। ममता को कभी तो छोड़ना ही पड़ता ! क्या घर बैठे बिठाये सब काम हो जाते ? और तुम तो आए भी शुभ उद्देश्य लेकर हो—उन्नति की उच्च आकांक्षाएँ लेकर। साधक और यात्री को उदासी से क्या काम ? आज यहाँ, कल वहाँ।

अभी तो पहला ही पड़ाव है। न जाने ऐसे कितने पड़ाव आयेंगे ? यदि इतने कायर थे तो घर से ही क्यों निकले थे ? उस समय तो चलने की ज़िद किए बैठे थे—वहाँ जाऊँगा, और अभी से तुम्हारा यह हाल है !

दिल बड़ा करो भाई ! लौटना ठीक नहीं। तुम जिनकी ममता से आकुल हो रहे हो, वहीं तुम्हें लौटते देखकर तुम्हारी खिल्ली उड़ायेंगे !

आगे बढ़ो, कहीं ऐसा न हो कि कल तुम्हें इस पड़ाव की स्मृति में भी उदास होकर दो एक बून्दें गिरानी पड़ें। तुम्हें किसी का मोह हो ही क्यों? जान बूझकर मोह-बन्धन में पड़कर तुम यात्रा क्या ख़ाक कर सकोगे?

उदासी तो बूढ़ों की बपौती है। निराश होना नपुंसकों का काम है। तुम तो आशावादी हो न यात्री! फिर उदास क्यों? यात्रा में निकले ही क्यों थे? यदि तुम इतने साहसी और उत्साहवाले थे कि तुम यात्रा का आरम्भ करने के लिए पग धरने को विवश हो गये, तो अब भी धैर्य रक्खो। साहसी बनो और आगे बढ़े चलो। उठाओ फिर से अपने पग उसी उत्साह तथा अध्यवसाय से; फिर देखो अपनी सफलता के लिए तुम्हें दुःख होता है या सुख? असफलता तो सफलता की पथ-प्रदर्शिका है।

देखते नहीं, संसार कितना आगे चला गया है? दिन-दूनी और रात-चौगुनी न जाने कितनी उन्नति किये जा रहा है? तुम पीछे रहकर लज्जित न होओगे? तुमसे तो बूढ़े ही अच्छे हैं! वह देखो, तुम्हारे पीछे जो यात्रि-मण्डल निकला था, वह तुमसे आगे बढ़ा जा रहा है। चमकते हुए सूर्य की गर्मी से उनके ललाट पसीने से कितने भरे हैं? उनके वस्त्र भी भीग गए हैं, तो भी वे अपने पथ पर डटे हैं। उनको दिन-रात, सुबह-शाम, सर्दी-गर्मी का विवेक ही नहीं, मानो उनके कोष में ये शब्द हैं ही नहीं। वे जानते हैं केवल यात्रा करना। तुम भी अपने

सामने यही लक्ष्य रक्खो। भूल जाओ पीछे, ऊपर, नीचे, दाएँ और बाएँ को, केवल आगे का ही ध्यान रक्खो। तभी तुम सफलता प्राप्त कर सकोगे।

वर्धा, जनवरी, ३७]

●

आनन्द-गीत

जब मैं रो-रो कर थक जाता हूं—आँसू तक सूख जाते हैं, तब मैं मस्त होकर तेरा ही आनन्द-गीत गाने लगता हूँ।

जब मैं चिन्ता और व्यथा से भली प्रकार ग्रस्त हो जाता हूँ—संसार भर मुझे खाने को दौड़ता है, उस समय मैं शांति का भिक्षुक बनकर तेरा ही गीत गाने लगता हूँ और सब कुछ भूल जाता हूँ क्षण भर के लिये!

जब सब भाई-बान्धव और मित्र मुझे दुःखों के मँझधार में अकेला छोड़कर किसी अनन्त की राह लेते हैं, मुझे निर्बल और निःसहाय कर देते हैं, तब मुझे केवल तेरे आनन्द-गीत से ही शांति और सांत्वना मिलती है।

किन्तु देव, क्या ऐसा कोई उपाय नहीं कि सुख में भी मैं तुम्हारे इस गीत को गा सकूँ? तुम्हारी याद मुझे केवल दुःख में ही क्यों आती है?

लाहौर, दिसम्बर, ३८]

●

नहीं मालूम !

मैं कौन हूं ? मेरा क्या है ? कुछ नहीं !
तेरी ही सेवा करने को जी चाहता है हमेशा ।
तेरी ही प्रेरणा से जगजीवन का भार चल रहा है ।
तू ही प्राण है, जीवन है और है उसकी गति !
तेरे बिना कुछ नहीं सुहाता ।
तू ही रुचि है, कामना है, लिप्सा है ।
तेरे बिना सब अन्धकार ही अन्धकार है,
तू ही प्रकाश है, दीपक है, ज्योति है ।
तेरी शरण में आकर मैं संसार को भूल जाता हूँ,
तू ही धर्म है, कर्म है, उपासना है !
तू दूर भी है और समीप भी ! बाहर भी और भीतर भी !
तू सब जगह व्याप्त है, मुझ में भी—
तेरे बिना मेरी सत्ता असम्भव है—
तुझ में ही लवलीन हो जाने को जी चाहता है,
जिससे तेरा और मेरा दोनों का भेद मिट सके,
फिर क्या होगा ? नहीं मालूम !

लाहौर, मार्च, ३८]

शैशव

शैशव की स्वर्णिम आभा,
कैसी मीठी मतवाली ?
इसमें कितनी गुदगुदियाँ,
कितनी यह भोली - भाली।

शिशु का जीवन तो मानो,
शुचि कोमल कलित कली है।
विधि की अपूर्व यह रचना,
जग को वरदान मिली है।

उसको मालूम नहीं यह,
है पुण्य किसे जग कहता।
है पाप नाम किस दुख का,
अपनी मस्ती में रहता।

कल्पना - जगत का माली,
शिशु, कवि से भी आगे है।
कवि की सीमा है सम्भव,
शिशु सम्भव से आगे है।

चन्दा को देख मचलना,
नभ - नक्षत्रों को पाना।
स्वाभाविक तथा सरल है,
उसका रोना औ' गाना।

शिशु का संसार निराला,
उसका अपना है शासन।
छल, द्रोह, पाप, वञ्चकता,
का वहाँ नहीं अनुशासन।

जीवन - काँटों में शैशव—
कुसुमों की एक कहानी।
सुन्दर है तो भी है यह,
उत्पल - दल का सा पानी।

शैशव का मोल परखना,
है सरित - लहर का गिनना।
आकाश - कुसुम का चुनना,
कल्पना - लोक का बुनना।

अन्धे से पूछे कोई,
आँखें अमूल्य हैं कितनी?
शैशव का मूल्य वही है,
सागर की लहरें जितनी।

शैशव की स्मृतियाँ भी तो,
सागर सी गहरी - गीली।
मानों पुष्पों ने मधु से,
गाथाएँ लिखीं रसीली।

लाहौर, दिसम्बर, ३९]

हाहाकार ?[1]

आज हाहाकार कैसा ?
बे-बुलाए आ फँसा, फिर फूल कैसा ? ख़ार कैसा ?
मौन कैसा ? क्रोध कैसा ? औ' करूँ प्रतिकार कैसा ?
आज हाहाकार कैसा ?

उमड़ता आनन्द का था उद्धि, नभ की सीढ़ियाँ चढ़,
हृदय में बचपन छलकता, उभरता था प्यार बढ़ - बढ़।
थी नहीं मुझको ख़बर, संसार ज्वालानल भरा है,
और छवि की ओट में, आकण्ठ हालाहल भरा है।
तद्पि बढ़ते देखकर जग पूछता—"आकार कैसा" ?
आज हाहाकार कैसा ?

शुभ्र था अञ्चल, न उस पर दाग़ औ' धब्बा ज़रा भी,
भावनाएँ थीं हृदय में — भावना में मधु भरा भी।
जोश था, उत्साह था, दिल और उसमें थीं उमंगें,
ठान ली —'अब चल पड़ूंगा प्रगति की लेकर तरंगें।'
बीच में ही भ्रष्ट-पथ लख — पूछता संसार कैसा ?
आज हाहाकार कैसा ?

क्या बताऊँ ? क्या उमंगें छा गईं मुझ पर निराली,
प्यार के संसार में मैं चल पड़ा हूँ हाथ ख़ाली।
पास जो कुछ था लुटाया, फूल से ज्यों रहित माली,
थी बचाई लाज जिनकी, दे रहे वे आज गाली,
और कहते — "अरे पागल! प्यार का अभिसार कैसा ?"
आज हाहाकार कैसा ?

लाहौर, सितम्बर, ३७]

१—अखिल-भारतीय प्रदर्शिनी, लाहौर—१९३७-में होनेवाले हिन्दी-कवि-सम्मेलन में पठित।

स्वर्ग

आज मैंने स्वर्ग देखा,
स्वर्ग में अपवर्ग देखा।

दुख निराशा की घटाएँ छा रही भू पर निरन्तर,
आँधियाँ तूफ़ान चलते, रात - दिन इस हृदय भीतर।
थम गया है आज अन्धड़, है प्रकाशित प्राण - रेखा।

ज़िन्दगी मेरी बनी है, एक गाथा इस जगत की,
है पहेली हो गई यह, वेदनाओं की, कसक की।
शेष है अज्ञात सब कुछ, है न सुख - दुख, पाप-लेखा।

है वहाँ कोई न पीड़ित, दर्द - ज्वाला जो जगाए,
है न शोषक - वर्ग, दुनिया को निरन्तर जो सताए।
सब तरफ़ छाई ख़ुशी है, दुःख की कोई न रेखा।

है बसी बस्ती निराली, हैं जहाँ शत - शत उमंगें।
आग भी, अनुराग भी है, प्यार की चञ्चल तरंगें।
आज मिलकर सब बसायें, जग नया, जग का अदेखा।
आज मैंने स्वर्ग देखा।

लाहौर, मई, ४०]

तुम और मैं

तुम राग औ' मैं रागिनी,
तुम चन्द्र औ' मैं यामिनी।
तुम मान, मैं अभिमानिनी,
तुम लक्ष्य, मैं संधानिनी।

तुम शब्द हो, मैं भावना,
तुम मन्त्र हो, मैं कामना।
तुम स्फूर्ति हो, मैं धारणा,
तुम मन्त्र हो, मैं तारणा॥

मैं वीन हूँ, झंकार तुम,
मैं हूक हूँ, हुंकार तुम।
मैं लालसा, संसार तुम,
मैं जलन हूँ, उद्गार तुम।

मैं हूँ नदी, हो कूल तुम,
मैं हूँ कली, हो फूल तुम।
उन्माद हूँ मैं, भूल तुम,
मैं वेल हूँ, हो मूल तुम॥

तुम विरह, तो मैं विकलता,
कर्म-शुभ तुम, मैं सफलता।
दृढ़ वृक्ष तुम, मैं हूँ लता,
हो मित्र तुम, मैं मित्रता॥

हो सुकवि तुम, हूँ कवित मैं,
हो उदधि तुम, हूँ सरित मैं।
हो देव तुम, हूँ पतित मैं,
हो मेघ तुम, हूँ तड़ित मैं।।

रुद्र हो तुम, शक्ति हूँ मैं,
ज्ञान हो तुम, भक्ति हूँ मैं।
तेज तुम, अनुरक्ति हूँ मैं,
भोग तुम, परित्यक्ति हूँ मैं।।

[लाहौर, नवम्बर ३९]

अनुरोध

फूल को मत तोड़ माली !

रश्मियाँ मुख चूमती हैं,
तितलियाँ भी घूमती हैं,
पान कर मधु झूमती हैं,
नव-उषा की लालिमा से कर इसे वञ्चित न माली !
तोड़ कर तू क्या करेगा ?
छेद दिल क्या मन भरेगा ?
बेच कर क्या धन मिलेगा ?
'रूप को क्यों बेचता रे !'—छोड़ती निश्वास डाली।
फूल का अपराध क्या है ?
मौन जिसकी साधना है !
शून्य की आराधना है।
रूप का है दण्ड क्या यह ? रूप तो वरदान खाली।

फूल है शोभा बढ़ाता,
विश्व इससे मान पाता,
है उसे सुरभित बनाता,
यह अजब संसार, इसमें है भले को आज गाली।

[क्वेटा, अगस्त ४०]

दीपमाला

दीपमाला जल रही है!

स्नेह दीपक को जलाता,
स्नेह बिन यह टिमटिमाता,
स्नेह बिन है व्यर्थ जीवन, स्नेह - गति अब ढल रही है।
दीप कब से जग रहे हैं,
विश्व जगमग कर रहे हैं,
जल स्वयं तम दूर करते, बस यही गति चल रही है।
स्नेह अपना सब लुटाया,
सब लुटाकर, कुछ न पाया,
आप अपने को गँवाया, जग - निठुरता खल रही है।
आज कैसी दीपमाला?
जल रही है हृदय-ज्वाला,
दिल हमारे जल रहे हैं, वेदना बस पल रही है।
दीपमाला जल रही है!

[लाहौर, दीपमाला, ४०]

नाविक से !

नाविक, ले चल मेरी नौका, पहुँचा दे उस पार,
इस दुनिया के झगड़ों से तू कर मेरा उद्धार।

चारों तरफ़ जगत के पापी करते रहते पाप,
माया-जाल नए रच-रच कर फैलाते दुष्पाप,
अपनी-अपनी इच्छाओं को पहनाते वरमाल,
फिर अपनी ही लीला पर वे देते रहते ताल;
करते हैं मेरी अबोधता को निशि-दिन हैरान,
बड़ा तंग रहता हूँ इनसे, झूठी इनकी शान,
नहीं जानता भव-सागर से कैसे हूँगा पार ?

ऊब चुका हूँ, इस दुनिया से, दुनिया के व्यवहार—
मुझे जलाते-कपटी, कामी, लोभी और गँवार;
जो निज खून-पसीना देकर करते अत्याचार,
पाप, अनीति, अधर्म, कलह का करते सदा प्रचार।
देश, जाति को पीछे लाने में जो शक्ति लगाते,
और धर्म की मर्यादा उलङ्घन कर सुख पाते;
मांझी ! इनसे मुझे बचाले और लिए चल पार !

यह भव-सागर अगम अतह है, इसमें नक्र महान,
ऊँच-नीच के आवर्तों में उठता है तूफ़ान,
यहाँ मकर रहते हैं सुन्दर, लेते हैं मन मोह,
किन्तु हलाहल भरा है' उनमें, करते प्राण-विछोह;

बुदबुद से कितने ही जीवन हुए यहाँ पर लीन
तूफ़ानी लहरों में बजती महामृत्यु की बीन;
खेवनहार, लिए चल जल्दी, नौका है मँझधार।
नाविक, ले चल मेरी नौका, पहुंचा दे उस पार।

[लाहौर, जनवरी, ३८]

मतवाला

मतवाले, मतवाला बनकर जग को भी मतवाला कर दे,
पी, पी, और पिए जा तलछट, इतना पी, मस्ती को भर दे।
बहुत कर लिया धर्म-कर्म, अब यहाँ तर्क का नाम नहीं है,
पाप-पुण्य, दुख-सुख की लीला का भी लेना नाम नहीं है।
कब तक विष के प्याले पीकर जग को सुधा दिये जाएगा ?
कब तक प्राण-दान कर अपना, जग को प्राण दिये जाएगा ?
कब तक स्वयं तड़पकर जग को सुख वैभव का दान करेगा ?
दया नहीं है, प्रेम नहीं है, यह जग तो वधिकों की बस्ती,
मीठी छुरी दिखाकर मानव हर लेते हैं सबकी हस्ती।
मत हो पागल, ओ दीवाने, यहाँ न कोई सुननेवाला,
इसीलिए कहता हूँ तुझसे—पीता जा प्याले पर प्याला।
कहने दे, जग को जो कहता, कहना ही तो इसका सम्बल,
कह कहकर सब थक जाएंगे, तदपि न समझेगा मानव-दल।
स्वार्थ, ठगी, अन्याय, पाप, हिंसा ही आज बसे हैं घर घर,
बस कर, जाने दे, क्या लेगा ? पी बस पी, प्याले भर भर कर।

[लाहौर, १५-१-४१]

कौन है मेरे हृदय में ?

प्राण अर्पण कर रहा हूँ, चेतना मैं खो रहा हूँ,
वेदना मैं ढो रहा हूँ, टीस, पीड़ा बो रहा हूँ,
मान अर्पित कर रहा हूँ, कौन है मेरे निलय में ?

प्यार की धूनी रमाई, इक नई बस्ती बसाई,
हृदय में ज्वाला जलाई, प्राण में पीड़ा समाई,
प्राण बन्दी हो चुके हैं, वेदना छाई निलय में ॥

प्राण कम्पित हो रहे हैं, प्राण छलनी हो रहे हैं,
प्राण सिसकी ले रहे हैं, प्राण पीड़ा ढो रहे हैं,
खो गया मधुमास, साथी, नीड़ मेरा है प्रलय में ।

प्राण उत्सुक हो रहे हैं, प्राण व्याकुल हो रहे हैं,
प्राण सुध-बुध खो रहे हैं, हाथ कम्पित हो रहे हैं,
वेदना अनुभूति मन में, कौन मेरे प्राण, तन में ?

रात बीती जा रही है, नींद छूटी जा रही है,
भोर होती जा रही है, चांदनी भी जा रही है,
करवटों में रात बीती, कौन मेरे पांवड़ों में ?
कौन है मेरे हृदय में ?

दिल्ली, अप्रैल १९५३]

●

ले लो अपना वरदान स्वयं

मैं अपनी बातें कह न सका, मैं उनकी बातें सुन न सका।
वे मुझसे रूठे बैठे हैं, मैं उनसे रूठा बैठा हूँ।
इस अनबन में आनन्द भरा, सब सुनते हैं, मुसकाते हैं।
किस किस को क्या कह समझाऊँ, चुप इसीलिए मैं रहता हूँ।
कहने, सुनने में उलझन है, चुप रहने में भी उलझन है।
यह उलझन भी आनन्द भरी, मन को उलझाए बैठा हूँ।
'हाँ' कहने में भी उलझन है, 'ना' कहने में भी उलझन है।
इस 'हाँ' 'ना' के चक्कर में, मैं, अपने को खोए बैठा हूँ।
मन व्याकुल है औ' चञ्चल है, अस्थिर विचार का भ्रम केवल।
वे मुझसे परिचित हैं, उनसे, मैं चिरपरिचित सा रहता हूँ।
रूठे रहने में एक मज़ा, वह और कहाँ है मिलने में?
मैं इसीलिए निश्चिन्त आज, अपने में खोया रहता हूँ।
सबको मेरी ही चिन्ता जब, फिर मुझको कैसी चिन्ता हो?
सब घुलते मेरी चिन्ता में, मैं नित मस्ती में रहता हूँ।
मेरे भोले मित्रो, सुन लो, किस उलझन चिन्ता में डूबे?
तुम अपनी उलझन सुलझाओ, मैं तो सुलझाए बैठा हूँ।
मस्ती में भूला रहता हूँ, मस्ती में डूबा रहता हूँ।
अलमस्त बना फिरता हूँ मैं, संकट पर संकट सहता हूँ।
फूलों से मुझको प्यार नहीं, मैं तो शूलों का शैदाई।
कण्टकमय मग का पन्थी हूँ, एकाकीपन में रहता हूँ।

आबाद रहें सब आलोचक, मुझको उनकी परवाह नहीं।
पथ पर मैं बढ़ता जाता हूँ, गुप - चुप जीवन में रहता हूँ।
मेरी चिन्ता, चर्चा छोड़ो, आबाद रहें रहनेवाले,
मैं तो उड़ता पंछी हूँ बस, कल्पना-लोक में उड़ता हूँ।
जीवन भर घूमा दूर - दूर, फिर भी जीवन से रहा दूर,
देखा, समझा, पहचाना, पर, मैं मस्त ख़ुदी में रहता हूँ।
चर्चा अधिकारों की केवल, कर्तव्य सभी के अपने हैं,
शब्दों की केवल चर्चा को, नित प्रति मैं सुनता रहता हूँ।
ले लो अपना वरदान स्वयं, मुझको अभिशाप मुबारक हों,
मैं अभिशापों की दुनिया में, नित प्रति ही घूमा करता हूँ।
मेरे अरमानों की चिन्ता करने का क्या अधिकार तुम्हें ?
मैं इन अरमानों को लेकर मन में ही डूबा रहता हूँ।
अरमान यही वरदान मुझे, अभिशाप यही वरदान मुझे,
अभिशापों, अरमानों में मैं, जीवन भर उलझा रहता हूँ।
आहों की क्या परवाह मुझे, विष भी मुझको बहका न सका;
मैं स्वयं आज वैरी बनकर, अपने में उलझा रहता हूँ।
मेरा वैरी है चञ्चल मन, समझाना चलता रहता है;
पर समझ नहीं इसको आती, इसलिए आज पछताता हूँ।

संगरिया (राजस्थान), १९५२]

●

मानव !

सुख - दुख दोनों की लीला, है केवल एक तमाशा।
दुख में सुख का आवाहन, ही देता रहता आशा।
दुख में सब रोते रहते, सुख में रोता है कोई।
सुख में सब हँसते रहते, दुख में हँसता है कोई।
जग के सब व्यवहारों में, रूखापन, केवल दर्शन।
सुख में सब संगी साथी, दुख में केवल सूनापन।
यह आशा का आवाहन, केवल है एक दिलासा।
वन्धन ही बन्धन जग में, आशा में छिपी निराशा।
सर्वत्र मचा है क्रन्दन, अत्याचारों का नर्तन।
सुख-शाँति बने मृग-तृष्णा, केवल अनियंत्रित रोदन।
सम्बन्ध जगत के सारे, हैं कूटनीति पर आश्रित।
है प्रेम नहीं अन्तर में, है केवल स्वांग विगर्हित।
मानव की, मानवता की, अब नहीं रही मर्यादा।
सब अपनी-अपनी गाते, कैसी विचित्र भव-गाथा !
भाई - भाई का अरि है, है पुत्र पिता का घाती।
कैसा ममता का सौदा, पीड़ा पीड़ित हो जाती !
हिंसा की ज्वाला से जग, पीड़ित होकर दुख पाता।
सुख, वैभव की आशा में, है कभी नहीं कल पाता।
है आज अहिंसा केवल, शास्त्रों में, औ' बातों में।
जगती के व्यवहारों में, हिंसा है मदमातों में।

नश्वर शरीर मानव का, माया, ममता का डेरा।
अभिशापित जग माया से - है बना स्वार्थ का चेरा।

जीवन है एक कहानी, मानव की भावुकता की।
विषकुम्भ-पयोमुख घट सी, आशा सी मृगतृष्णा की।

बन गया धर्म अब केवल, दुनियादारी का साधन।
आडम्बर ही आडम्बर, माया का केवल छादन।

अन्याय और परवशता, ही इस जग के अभिनर्तन!
कैसा असाम्य फैला है, कैसा अद्भुत परिवर्तन!

कहने को तो सब कहते, करता है कोई - कोई।
सुख की इच्छा तो सबको, पाता है कोई - कोई।

मानवता आज बनी है, धनवानों की पग - जूती।
छाया धनमद है केवल, बजती उनकी ही तूती।

स्वेच्छा का ही है शासन, मानवता कुचली जाती।
सर्वत्र प्रसारित केवल, निष्ठुर हिंसा मदमाती।

बजती अशाँति की भेरी, सर्वत्र आज भूतल में।
चिन्ता, पीड़ा, परवशता, दुख, फैले अतल-वितल में।

अत्याचारों की होली—से मानव आज प्रपीड़ित।
लाठी की प्रभुता है अब, है जगत शक्ति से पीड़ित।

वे रामराज्य की बातें, कल्पित स्वप्नों सी लगतीं!
प्रतिकार भरी सब घातें, मानव-पलकों में जगतीं!

विश्राम, कहाँ, इस जग में ? कहने भर को मिलता है।
अब अविश्वास ही केवल, नर-पलकों में खिलता है।

अब सत्य, प्रेम की बातें, सब कल्पित सी लगती हैं।
वे दया, धर्म की श्रुतियाँ, दुःस्वपनों सी खलती हैं।
साहस, बल, शौर्य, गुणों का, अब नहीं कहीं आराधन।
औदार्य, त्याग के भावों—का आज नहीं आस्वादन।
कर्तव्य, विनय तो केवल, कल्पना-लोक में रहते।
शुचि प्रेम, स्नेह, मृदु-ममता के भाव नहीं अब बहते।
भीषणता ही भीषणता, कोलाहल ही कोलाहल।
संसार अखिल में फैला, बनकर यह आज हलाहल।
ये टैंक, रिसाले तोपें, हत्या को तत्पर रहते।
है रक्त-पिपासा मन में मानव के हरदम भरते।
ये युद्ध कभी भी जग को, सुख-शाँति नहीं दे सकते।
मानवता, संस्कृति सारी-का सर्वनाश ये करते।
विज्ञान बनाया नर ने, जनहित को सम्मुख रखकर।
पर, आज वही अरि बनकर--नर-हत्या में है तत्पर।
भूधर भी काँप उठे इन—अत्याचारों से डर कर।
सारा जग भीत-चकित है, खूनी होली में रंग कर।
बढ़ती है तानाशाही, मानवता 'हा' 'हा' करती।
इसकी यह खूनी क्रीड़ा, निष्पाप जनों पर पड़ती।
शस्त्रों से सज्जित होकर, मानव बन गया वधिक है।
नर-हत्या लक्ष्य बनाया, इसको न भीति-भय, धिक् है!
हैं एक पिता की सन्तति, फिर भी आपस में लड़ते।
लड़-लड़कर हैं मर जाते, लघु-लघु स्वार्थों पर अड़ते।

है लक्ष एक ही सबका, पर मार्ग भिन्न हैं इनके।
ज्यों नीड़ एक ही बनता, लगते बन-बन के तिनके।
जग पर संकट छाया है, दुःखों की बदली छाई।
विद्यु त्-रेखा ने कुछ कुछ, आशा की कली खिलाई।
बंधन ही बंधन जग में, है कहीं नहीं छुटकारा।
पग पग संघर्ष यहाँ है, लड़ लड़कर मानव हारा।
भीषण हैं ये सब बातें, जीवन की, जन्म मरण की।
थक गया सोचकर मानव, पर मिटी व्यथा कब मनकी ?
सुख है, तो सब जलते हैं, दुख में भी साथ न कोई।
कैसे उलझन सुलझाए, एकाकी बना बटोही।
विश्राम नहीं इस जग में, बस केवल एक कलपना।
निशिदिन, पल-पल औ' क्षण-क्षण, है केवल एक विलपना
अनियंत्रण, द्रोह भरा है, मानव में, मानव-दल में।
कैसे सुख-शांति मिले जब, भव जलता छलनानल में।
आदर-सत्कार नहीं जब, तब श्रद्धा-प्यार कहाँ हो ?
सेवा का भाव नहीं जब, तब लाड-दुलार कहाँ हो ?
मानव का जीवन चलता, है आज कलों-पुर्ज़ों से।
अपनापन खो डाला सब, समता केवल मुर्दों से।
कायरता का है शासन, पाखंडों का है डेरा।
सारे जग में ही व्यापक, है केवल स्वार्थ घनेरा।
इस स्वार्थमयी जगती में, रहना भी तो है दूभर।
जग के अत्याचारों से, हैं कांप रहे सब भूधर।

है कूटनीति पर आश्रित, जग की यह नाटकशाला।
छल, द्रोह, पाप औ' हिंसा की आकर्षक मधुशाला।
भूधर से भी ऊँचा है, अभिमान यहाँ मानव का।
पर निर्मित है मिट्टी से—ही क्षीण-काय यह इसका।
जग की उलझन को मानव समझे भी समझ न पाता।
सुख में हंसता रहता है—दुख में है अश्रु बहाता।
ममता कैसी इस जग में ? ममता ही तो है बन्धन।
ममता है दुख से भीगी, ममता ही तो है क्रन्दन।
ममता, माया ये दोनों—ही हैं जग में दुखदाई।
ऊपर से हैं आकर्षक, भीतर हैं लिए तबाही।
दोनों "विषकुम्भ-पयोमुख" मानव को नाच नचातीं।
टुक चैन न लेने देतीं, तिल - तिल कर हैं कलपातीं।
माया को नाच नचाकर, मानव - मानव बन जावे ?
जब भेद - भाव के बन्धन—को तोड़ मुक्त हो जावे ?

लाहौर, अप्रेल, ३९]

???

आज मेरे भाग्य पर काली घटाएँ छा रही क्यों ?
जानता मैं भी नहीं हूँ: यह निराशा ला रही क्यों ?

क्या कहूँ दुर्दैव ही केवल बना साथी खड़ा क्यों ?
साथ ही उन्माद उसका छोड़ता पीछा नहीं क्यों ?

इस निरे पागलपने में डूबता कब तक रहूँ मैं ?
कर दिया बेचैन है, भावुक बना कब तक रहूँ मैं ?

कुटिलताओं का जगत की, क्यों निशाना ही बनूँ मैं ?
विषमताओं—आपदाओं का बसेरा क्यों बनूँ मैं ?

क्या निराशाएँ सभी मेरे लिए पैदा हुई हैं ?
क्या सभी दुख की घटाएँ छा गई मेरे लिए हैं ?

क्या सभी अभिशाप जग - भर के बने मेरे लिए हैं ?
दीनता, पीड़ा, निराशा—क्या सभी मेरे लिए हैं ?

नाश प्रतिपल बढ़ रहा है, घट रहा संघर्ष का बल,
डूब जाना ही जगत में क्या रहेगा एक सम्बल ?

स्वत्व के गिरते शिखर क्यों ? छा रही है कालिमा क्यों ?
खो रही हैं क्यों दिशाएँ ? मिट रही है लालिमा क्यों ?

लाहौर, जून, ३७]

मैं

सृष्टि मैं, सृष्टि का आधार हूँ मैं,
जन्म मैं, मरण का व्यापार हूँ मैं।

कसक है, टीस है, औ' बेकली है,
कसकती वेदना का भार हूँ मैं।

घटाएँ हैं, निराशा की अमा है,
अमा में पूर्णिमा साकार हूँ मैं।

जवानी है, जवानी की उमंगें,
उमंगों की मधुर झङ्कार हूँ मैं।

दुःख - सुख बन गए मेरी कहानी,
कहानी का सरल संसार हूँ मैं।

विषमता, बेबसी, बेचारगी, दुःख,
इन्हीं का मूर्त हाहाकार हूँ मैं।

हृदय में आग जो फूंके निरन्तर,
प्रलय बन, वह प्रलय - हुङ्कार हूँ मैं।

दीप मैं, जो शलभ की चिर पिपासा,
उसी लौ की तिमिरमय धार हूँ मैं।

हृदय है, हैं हृदय में लालसाएँ,
उठीं, फिर मिट गईं, बस क्षार हूँ मैं।

तड़पना ही रहा मेरे लिए नित,
पराजित - जय, विजित की हार हूँ मैं।

उजड़ने के लिए ही मैं बना हूँ,
मरण - छवि का वितत विस्तार हूँ मैं।

न देता साँस भी लेने जगत यह,
नजर में गड़ रहा; वह ख़ार हूँ मैं।

क़फ़स ही आज मेरा आशियाना,
जगत से हो गया बेज़ार हूँ मैं।

लाहौर, मई, ४०]

....मत हैरान करो

निर्माण किया तुमने मेरा, मैंने डाला जग में डेरा,
पथ भूल चुका हूँ, मैं चेरा, संहार करोगे तुम मेरा ?
मैं पहले से ही घबराया, मत मुझको अब हैरान करो।

मैंने क्या है अपकार किया ? मैंने क्या है इनकार किया ?
क्यों मुझको है लाचार किया ? क्यों मुझसे है प्रतिकार लिया ?
जग के हे पालक सूत्रधार, मत मुझको अब वीरान करो।

यह जग तो गोरख-धन्धा है, यह जग तो कोरा फन्दा है,
यह मग तो टेढ़ा गन्दा है, है पूछताछ, पर मन्दा है,
हे कर्णधार, रचना तेरी, मत तोड़-फोड़ अपमान करो॥

यह सच है, मैं तो तेरा हूँ, हूँ बुरा भला सब तेरा हूँ,
मैं क्षुद्र, भद्र-सब तेरा हूँ, दूँ दोष किसे, जब तेरा हूँ ?
मेरे नेता, मेरे त्राता, अब तो तुम मेरा त्राण करो

मुझको मत अब हैरान करो।

दिल्ली, जनवरी, १९४८]

अकेला !

क्या अधूरी कामनाएँ विश्व में मेरे लिए ही ?
क्या पराजय - पथ यहाँ सब हैं बने मेरे लिए ही ?
क्या निराशा की अमा मेरे लिए पैदा हुई है ?
वेदना की हूक क्यों जी-जान से शैदा हुई है ?

क्यों जगत में आज सब मुझको अकेला छोड़ भागे ?
और क्यों अरमान मुझसे उलझते मुँह मोड़ भागे।
क्यों अकेला मैं दुखी, दुख सांस मेरी बन गया क्यों ?
आपदाओं के उदधि में डूबने को मन गया क्यों ?

कौन कहता—मैं ? नहीं, सारा जगत ही है अकेला।
कर्मफल की सीढ़ियाँ, चढ़ता, उतरता है अकेला;
विश्व - कारागार में फँसता, निकलता है अकेला।
लौटनेवाला जगत से दीखता जाता अकेला।

यह मिलन का खेल जग में है प्रवञ्चन और माया,
है दिखावा, दम्भ, अविनय, हीन-नय, भ्रम और छाया।
विश्व का सम्बन्ध सारा है क्षणिक, केवल दिखावा,
स्वार्थ से भरपूर है सब, बुद्धि का केवल भुलावा।

किसलिए फिर विश्व का आनन्द लूँ, विश्वास लूँ मैं ?
किसलिए उससे डरूँ, आहें भरूँ, निःश्वास लूँ मैं ?
यह मनुज आता अकेला—यह मनुज जाता अकेला।
यह मनुज हँसता अकेला, यह मनुज रोता अकेला।

लाहौर, अगस्त, ३७]

●

कहानी

जीवन है एक कहानी।

मानव है नायक इसका, माया है नटी पुरानी।

आशा और निराशा दोनों माया की हैं दासी,
निशिदिन मानव की आँखों को करती रहती प्यासी।
आज निराशा के दामन में, कल आशा है रानी।
जीवन है एक कहानी।

मानव है अविवेकी अन्धा, समझ नहीं कुछ पाता,
सुख में हँसता रहता, आँसू दुख में खूब बहाता,
अपनेपन को भूल गया है, माया का अभिमानी।
जीवन है एक कहानी।

मृग - मरीचिका सी माया मानव को खूब छकाती,
क्षण - क्षण अपना रूप बदलकर इसको मस्त बनाती,
'पानी' की रट लगी रही, पर मृग को मिला न पानी।
जीवन है एक कहानी।

क्वेटा, सितम्बर ३८]

●

गीत

विश्व कारागार साथी !
विश्व हाहाकार साथी !

दुख क्षणिक है, सुख क्षणिक है,
प्रेम औ' ममता क्षणिक है,
जगत में जीवन क्षणिक है,
प्रेम - विक्रय हो रहा है, स्वार्थ भू का भार साथी !

बन्धनों में ग्रस्त मानव,
बन्धनों में त्रस्त मानव,
बन्धनों में व्यस्त मानव,
बन्धनों में बँध रहा है, यह सकल संसार साथी !

जग नहीं दुःख बाँट लेगा,
सुख अगर, वह भी जलेगा,
आप ही निज को छलेगा,
स्वार्थ - छल - बल ही बना है, जगत का व्यापार साथी !

विश्व कारागार साथी !*

लाहौर, अप्रैल, १९४०]

---

* लाहौर रेडियो से पठित ।

उद्गार

अन्तर के उद्गार, बटोही,
सुन लो तुम्हें सुनाता हूँ।

बहुत सही, सह - सह कर हारा,
जीवन है प्राणों की कारा,
उतर गया पागलपन सारा,
जीत तुम्हारी, मैं तो हारा,
यूँ ही समय बिताता हूँ।

अकथ कहानी है हारों की,
पागल दिल के मनुहारों की,
मेरे मानस - उद्गारों की,
स्वार्थ भरे जग - व्यवहारों की,
आओ, तुम्हें सुनाता हूँ।

प्यार खूब है किया जगत में,
चाह भरा दिल दिया जगत में,
मोह - सुरा को पिया जगत में,
सभी दिया, जो लिया, जगत में,
अब केवल पछताता हूँ।

मैंने क्या अपकार किया है ?
किससे यों तकरार किया है ?
किससे कब प्रतिकार लिया है ?
तलछट हाहाकार किया है।
फिर क्यों अपयश पाता हूँ ?

छल से कोसों दूर रहा मैं,
यश से कोसों दूर रहा मैं,
भय से कोसों दूर रहा मैं,
भव से कोसों दूर रहा मैं,
अपनी तान बजाता हूँ।
कोशिश की, पर, वृथा हुई सब,
छानी पृथ्वी, वृथा हुई सब,
आशा पाली, वृथा हुई सब,
रूप जवानी, वृथा हुई सब,
किसको, कहो, सताता हूँ ?
अन्तर के उद्गार बटोही, सुनलो, तुम्हें सुनाता हूँ।

[क्वेटा, जुलाई ३८]

मरने पर भी वह सदा अमर !

ते'रे' प्रेमकी जिसको लगी हो लगन, उसे मरने, जीनेका क्या डर
ते'रे' ध्यान की जिसको चाह लगी, क्या जग की बातों से है डर?
जग कहता है क्या, कहने दे, कहना ही तो इसका सम्बल,
प्रेमी क्यों जग का ध्यान करे, निन्दा-स्तुति दोनों का सम-स्वर।
प्रेमी की कुछ भी चाह नहीं, उसको जग की परवाह नहीं,
भूखा, नंगा, प्यासा रहता, मरने पर भी वह सदा अमर।
प्रेमी का कुछ भी स्वार्थ नहीं, प्रेमी मतवाला जोगी है,
देने को वह तत्पर रहता, लेने की उसको नहीं खबर।
अपने ही मन का है स्वामी, अपनेपन में डूबा रहता,
अपनी मस्ती में है रहता, निज प्रियतम में डूबा है स्वर।
मरने पर भी वह सदा अमर।

[दिल्ली-शाहदरा, सितम्बर, १९५५]

चिन्ता

चिन्ता की चिनगारी !
तिल - तिल करके मुझे जलाती है यह दुनियादारी।

चिन्ता चिता सगी बहिनें हैं, ये दोनों कलपातीं,
पल - पल, क्षण-क्षण आकुल करतीं और नहीं कल पातीं,
कैसे छुटकारा री ?

चिन्ता की ओ दाहक ज्वाले, अधिक नहीं कलपाओ,
आगे ही है आग लगी, मत मुझको और जलाओ,
शान्त करो माया री !

मेरी आशाओं को तुमने भस्मसात कर डाला,
चिर - संचित इस सुप्त - वेदना को झंकृत कर डाला,
अब छोड़ो पीछा, री !

सच कहता हूँ, झुलस चुका हूँ, सह न सकूँगा अब मैं,
घुल - घुल कर खोया अपनापन, सुध खो बैठा सब मैं,
अब तो करो दया, री !

क्वेटा, जून, ३८]

●

पीड़ा

पीड़ा इस सूने मन की।
आज बनी उन्मत्त प्रेयसी, मेरे मन की, तन की।

तड़पाती है, मुझको निशिदिन, सांझ-सवेरे हरदम,
उठते, सोते, चलते, कलपाती ही रहती निर्मम,
पथ - भूला हो बैठा हूँ मैं, विकल दशा है मन की।

जकड़ लिया इसने मेरा—उर, इसका हूँ मैं बन्दी,
मुझको शासक से शासित कर दिया, यही छर-छन्दी,
नहीं समझ पाया अब तक, क्या इच्छा इस दुर्जन की,

मेरे जीवन का प्याला ही डूब रहा पीड़ा में,
सुध - बुध भूल गया हूँ अपनी, पीड़ा की क्रीड़ा में,
पीड़ा का सर्वत्र नियन्त्रण, चिंता तनिक न तन की।

इस पीड़ा में ही तो मेरा अपनापन सोता है,
तेरा ध्यान मुझे पीड़ा की चोटों में होता है,
पीड़ा तो वरदान मिली है, मेरे तप - साधन की।
पीड़ा इस सूने मन की।

क्वेटा, अगस्त, ३८]

●

परिचय

क्या है परिचय मेरा ?
पता नहीं है जब मुझको भी, मेरा अपना डेरा।
नहीं जानता, इस धरणी-तल पर क्यों मैं हूँ आया ?
इस पापिन माया के फन्दे में मैंने क्या पाया ?
अब मैं और शून्य है केवल, चारों ओर अँधेरा।

मेरे तेरे के चक्कर में ऐसा मन है डोला,
समझ न पाया सत्य झूठ को, एक बाट ही तोला;
अपनापन तक खो डाला है, बना स्वार्थ का चेरा।

पता नहीं मुझको अब तक, इस जग की राम-कहानी,
कौन बनाने वाला इसका, मन-मौजी, सैलानी,
फिर कैसे दूँ परिचय अपना, क्या मैं हूँ, क्या मेरा ?

सब हैं बन्दे उस मालिक के, शास्त्र हमें बतलाते,
वह है सबका पालनकर्ता, वेद हमें सिखलाते;
फिर क्यों अपना मोह जगत से, यह है रैन-बसेरा !

क्या बतलाऊँ ? मैंने कितने पाप कमाए अब तक,
क्रोध, लोभ, मद-मोह-जाल में पैर फँसाए अब तक,
चोरी, झूठ, ठगी, भ्रम, माया, में ही डाला डेरा।

बन्द करो बस, सुन न सकोगे, मेरी परिचय-गाथा,
मेरा परिचय ही है सबका, मत ठनकाओ माथा,
छोड़ो यह सब गोरख-धंधा, क्या मेरा, क्या तेरा ?

मत गाओ, छोड़ो अब तो वे, अपने गीत पुराने,
फूलो मत अतीत पर, देखो वर्तमान, दीवाने;
नहीं जानता, जब मैं क्या हूँ, क्या हो परिचय मेरा ?

[क्वेटा, सितम्बर ४०]

●

उपहार

विश्व को उपहार क्या दूँ ?
माँगता संसार, क्या दूँ ?

सुख दिया आनन्द खोया,
फूल के मिस शूल बोया,
दुःख ढोया, पाप ढोया,
वेदना का भार क्या दूँ ?

मुक्त जीवन बाँध डाला,
है अमृत - प्याला उछाला,
पी लिया विषपूर्ण प्याला,
गरल का उपहार क्या दूँ ?

पाप ही करता रहा हूँ,
पुण्य से डरता रहा हूँ,
निज उदर भरता रहा हूँ,
स्वार्थ से लाचार क्या दूँ ?

व्यर्थ जीवन को गँवाया,
क्षुद्र आशा ने फँसाया,
किंतु, शाश्वत सुख न पाया,
शांति का आधार क्या दूँ ?
विश्व को उपहार क्या दूँ ?

[क्वेटा, जुलाई ४०]

●

ज़िन्दगी के गीत गा !

ज़िन्दगी के गीत गा,
ज़िन्दगी के ओ पथिक !
ज़िन्दगी का मर्म पा,
ज़िन्दगी के ओ धनिक ॥

ज़िन्दगी प्रवाह है, ज़िन्दगी उमीद है।
ज़िन्दगी विकास है, ज़िन्दगी मशाल है।
ज़िन्दगी है 'इक सफ़र, पड़ाव है बने यहाँ।
दुख यहाँ हैं, सुख वहाँ, रवानियाँ जहाँ तहाँ।

ज़िन्दगी में आग है, ज़िन्दगी में राग है।
ज़िन्दगी में जोश है, ज़िन्दगी मदहोश है।
ज़िन्दगी पुकार है, ज़िन्दगी खुमार है,
ज़िन्दगी में प्यार है, जीत भी औ' हार है।

यन्त्र की पुकार है, यन्त्र का प्रवाह है।
ज़िन्दगी सिसक रही, मनुज रहा कराह है।
ज़िन्दगी में खो रहा, पथिक है राह ढूँढता।
कभी इधर, कभी उधर, है मार्ग निज टटोलता।

अंधकार बढ़ रहा,
शोर खूब मच रहा।
ज़िन्दगी का कारवाँ,
कदम कदम है बढ़ रहा।

●

जवानी ढल रही है

जवानी ढल रही है, रवानी ढल रही है

बुढ़ापा आ रहा है, अँधेरा छा रहा है।
वह' बचपन याद आता, नहीं वह भूल पाता।
उषा अंगड़ा चुकी है, दुपहरी जा रही है।
वह' सन्ध्या आ रही है, निशा मुसका रही है।

दिवस-मणि जा रहा है, वह' सूरज ढल रहा है।
औ' छाया बढ़ रही है, औ' गर्मी ढल रही है।
अँधेरा आ रहा है, उजाला जा रहा है।
दिवाकर जा रहा है, निशाकर आ रहा है।

यह' जीवन चल रहा यों, यह' यौवन ढल रहा यों।
निशा औ' दिवस आते, दिखा मुख, बढ़ हैं, जाते।
यह जोवन-क्रम है चलता, यह जीवन-क्रम है ढलता।
यह' सुख दुख आते रहते, मिचौली खेल जाते।

मनुज हैरान रहता, नहीं कुछ भेद पाता।
समझना चाहता है, न मन पर मानता है।
स्वयं खोकर ही पाता, समझ में कुछ न आता।
यह' जीवन की कहानी, है उलझी औ' न जानी।

●

जीवन का कौन ठिकाना

लक्ष्य ओर चलता रह अविरत, आगे ही बढ़ जाना।
दूर निराशा कर दे अपनी, ममता-माया दूर भगा।
सँभल-सँभलकर चलरे' पथिक तू आशा को निज ओर बुला।
साहस भर कर अपने मन में, कर्म-क्षेत्र में जाना।

सुख-दुख की लीला के ऊपर, उठकर ऊपर ध्यान लगा,
बाहर के पट मूंद के' अपने, मन में तू कुछ झांक जरा,
भीतर के पट खोल पथिक तू, सोच कहाँ है जाना?

मेरे तेरे के झगड़े से, ऊपर उठ, खुद को पहचान
कोई नहीं है दुख का साथी, बात तू मेरी मान,
तुझ में ही तो परमेश्वर है, फिर क्यों मन भटकाना?

काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ सब, तुझको मस्त बनाएंगे,
अहंकार ईर्ष्या से अरि सब तुझको पस्त बनाएंगे,
समझ बूझ कर इनसे रहना, यदि है वीर कहाना।

उधर देख, भारत माँ तुझ पर आश लगाए बैठी है,
फटे चीथड़ों में लिपटी है, आँसू खूब बहाती है,
पराधीनता की बेड़ी से, उसको मुक्त कराना॥
जीवन का कौन ठिकाना?

[पहला गाम, २२ अगस्त, १९५६]

●

झूठ सुनकर....?

गीत सुनकर क्या करोगे ?

भार जीवन हो गया है,
ख़ार जीवन हो गया है,
हार जीवन हो गया है,
सुख हुआ है आज सपना, दुःख लेकर क्या करोगे ?
स्वप्न सुख के खो गए हैं,
टीस, पीड़ा बो गए हैं,
शांति ले, लय हो गए हैं,
इस विकलता की अमा में, पूर्णिमा क्या ला सकोगे ?
जीर्ण यह जीवन-तरी है,
बीन भी टूटी पड़ी है,
बाँसुरी भी बेसुरी है,
तार मन के छिन्न सारे, क्या बजा इनको सकोगे ?
विश्व में 'हा' 'हा' लगी है,
दुख की ज्वाला जगी है,
दीनता है औ' ठगी है,
स्वार्थप्रेमी इस जगत से, प्रीति करके क्या करोगे ?
गीत के क्षण खो गए अब,
प्रीति के क्षण खो गए अब,
रीति के प्रण हो गए अब,
सुन सको तो आह सुनलो, चाह लेकर क्या करोगे ?

मच रहा संघर्ष जग में,
शूल छाए आज मग में,
बेड़ियाँ हैं आज पग में,
सत्य का मुंह बन्द है अब, झूठ सुनकर क्या करोगे ?
गीत सुनकर क्या करोगे ?

[लाहौर, मई, ४०]

●

आज कैसी यह जुदाई ?

विश्व है विश्राम शाला, आज, फिर कैसी विदाई ?
है कहानी ज़िन्दगी यह, है रवानी ज़िन्दगी यह,
है निशानी जिन्दगी यह,
ज़िन्दगी के इस सफ़र में, आज यह कैसी विदाई ?
हम मुसाफिर, हमको जाना, है नहीं कोई ठिकाना,
है नहीं कोई फ़साना,
हम बटोही ज़िन्दगी के, आज कैसी बेवफ़ाई ?
भाग्य से तुमको था, पाया, तुमको, पाकर मन रमाया।
आज मनमें दुख समाया,
भाग्य था तुम से मिले, पर आज कैसी यह जुदाई ?
कर जगत में तू भलाई, छोड़ करके सब बुराई।
सत्य की ही कर कमाई,
सत्य-पथ पर तू चलाचल, बन स्वयं अपना सहाई।
आज कैसी यह विदाई ?

[क्वेटा, २०-८-४१]

●

किसने पहचाना ?

कोई कहता यह केवल सुख,
कोई कहता यह केवल दुख,
पर इसका भेद नहीं जाना।
जीवन को किसने पहचाना ?

माया बन्धन, ममता बन्धन
है दुख इस क्षण, है सुख उस क्षण,
जीवन इनसे है तर जाना।
जीवन को किसने पहचाना ?

कोई संग्राम इसे कहता,
कोई विश्राम इसे कहता,
मैंने रहस्य इसको माना
जीवन को किसने पहचाना ?

है एक कहानी यह जीवन,
है एक रवानी यह जीवन,
खोना ही इस में पा जाना।
जीवन को किसने पहचाना ?

[सरदारशहर, जून १९४३]

आँसू

इन अश्रुकणों में रहती, मेरे मानस की पीड़ा।
छप-छप छलकाती रहती, हर दम भीतर की व्रीड़ा।

जीवन-प्याली डूबी है, संघर्षों की लहरों में।
मानव कैसे तर पाए, जब उठता ज्वार उदधि में।

पीड़ा, चिन्ता ही रहतीं, शाश्वत जीवन की सङ्गिन।
जीवन पीड़ा बिन सूना, कटती हैं घड़िया गिन-गिन।

इस खारे पानी में तो, जीवन का भेद छिपा है।
इस पीड़ा की क्रीड़ा में: प्राणों का दीप जला है।

अन्तर में आग भरी जो-निशिदिन व्याकुल करती है।
वस वही कभी पीड़ित हो, जलकण हो बह पड़ती हैं।

आँसू की दो बून्दों में, जग का इतिहास भरा है।
दुख, परवशता, लाचारी, औ' हाहाकार भरा है।

अति-सुख में जब मानव का, मानस उछला-सा पड़ता।
तब वही आँख में भर कर, आँसू बन, झर-झर झरता।

अति-दुख में भी यह मानव, सुध-बुध को भूल कलपता।
तिलतिल कर और मचलकर, दुख आँसू बन बह पड़ता।

इस खारे जल की गाथा—का है इतिहास निराला।
गीला रहता है तो भी, सूखा है जीवन-प्याला।

रोके से कभी न रुकती, इन अश्रुकणों की धारा।
झरती ही रहती हरदम, कैसे हो अब छुटकारा?

[लाहौर, अप्रैल, ३९]

कैसा गीत ?

कैसा गीत सुनाऊँ, सखि री! कैसा गीत सुनाऊँ ?
हृत्तन्त्री की स्वर-लहरी पर कौन बिहाग बजाऊँ ?
शैशव बीता, यौवन बीता, आई सन्ध्या-रानी,
पलपल, क्षणक्षण, व्याकुल रहता, ज्यों प्यासा बिन पानी,
जीवन की अन्तिम घड़ियों में कैसा तार बजाऊँ ?
जीवन के पहले प्रभात में जो मुस्कान खिली थी,
यौवन की आँधी के झोंको में जो प्यास मिली थी,
समझ न पाया उसको मैं भी, फिर कैसे बतलाऊँ ?
कैसी सुख की घड़ियाँ थीं वे, जब हम हिल-मिल खेले,
कैसी थी मस्ती जीवन में, हम थे तब अलबेले,
कैसी तान छिड़ी थी मन में, कैसे वह दुहराऊँ ?
जब सबने था नाता तोड़ा, तुमने मुझे न छोड़ा,
पलपल, निशिदिन, दिया सहारा, दुख में नेह न तोड़ा,
मुझे मिला वरदान सखी री! कैसे उसे भुलाऊँ ?
तुमने भी तो है मुँह मोड़ा, मुझको बिना बताए,
चल दीं तुम चुपके-चुपके ही, मुझको नशा पिलाए,
तुम ही बोलो, अब मैं किसको, अपना हाल सुनाऊँ ?
अब मैं ही रह गया अकेला, दुख की घड़ियाँ गिनने,
सूनापन है साथी मेरा, नाता तोड़ा सबने,
तुम ही बतलाओ, हे रानी! किसको व्यथा दिखाऊँ ?

विराग: [निर्झर

शेष रहा है केवल आहें भरना, वेसुध होना,
आँसू ढरना, तड़प-तड़प कर अपनेपन को खोना,
सुननेवाला, कौन ? किसे मैं दिल की बात बताऊँ ?*
कैसा गीत सुनाऊँ ?

[लाहौर, मार्च, ३८]

* शिमला सम्मेलन में तथा लाहौर रेडियो से पठित।

जल रही बाती

जल रहे दीपक, ज्योति है जगमग,
है प्रकाशित जग, ज्योति है अग-जग,
जा तमिस्रे, भग, जल रहा सब जग।
रुक गया पन्थी, पास है थाती, जल रही बाती।
सो रहे मानव, सो रहे दानव,
सो रहे पन्थी, सो रहे ग्रन्थी,
सो रहा अग-जग, शाँति है पग पग,
बोलते हाथी, धड़कती छाती, जल रही बाती।
दीप जलता है, नेह पलता है,
नेह झरता है, हाथ मलता है।
सब तरफ़ सुनसान, सब तरफ़ वीरान,
ऊंघते प्रहरी, धड़कती छाती, जल रही बाती।

वेदने

अरी वेदने, भली पली।

तिल तिल कर तूने मुझको, कर घायल है तड़पा डाला,
छिल-छिल कर छाले अन्तर के-फोड़े, विकल बना डाला।
अब क्या लेगी, जान, छली !
अरी वेदने, भली पली।

अब न अधिक तड़पा तू मुझको, काफ़ी तड़प चुका हूँ मैं,
सह न सकूँगा, सच कहता हूँ, साहस खो बैठा हूँ मैं।
व्याकुल मत कर और, अली !
अरी वेदने, भली पली।

मैं जीवन से ऊब चुका हूँ, औ' सुध-बुध खो बैठा हूँ,
ऊबड़-खाबड़, मार्ग कठिन है, पथ-भूला हो बैठा हूँ,
तेरी छलना खूब फली !
अरी वेदने, भली पली।

जब कोई अवलम्ब नहीं था, तब तुझको मैंने पाला,
सारी सुविधाएँ दे डालीं, औ' अपनापन खो डाला।
बिना मोल के फँसा, छली !
अरी वेदने, भली पली।

इस दुख पाने से तो अच्छा, मृत्यु-सुरा का पान अरी !
टीस, कसक, पीड़ा; तड़पन से मिल जाएगा त्राण, अरी !
व्याकुलता से मृत्यु भली।
अरी वेदने, भली पली।

[क्वेटा, जून ३८]

तार

टूट गए वीणा के तार!
हृत्तन्त्री की स्वर-लहरी पर कैसे हो झङ्कार?
टूट गई वह मस्ती मेरी,
छूट गई वह बस्ती मेरी,
नहीं रही वह हस्ती मेरी,
बीच उदधि के किश्ती मेरी,
सुध-बुध खो बैठा हूँ, इससे कैसे हो उद्धार?

नहीं रहे अब संगी-साथी,
अब केवल मैं हूँ एकाकी,
मेरी है चिन्ता न जगत को,
नहीं मुझे परवा दुनिया की,
अपनापन तक खो बैठा हूँ, बस पीड़ा साकार।

तड़प,कसक,व्याकुलता, पीड़ा,
शोक, वेदना, आँसू, व्रीड़ा,
घुल-घुल कर मरना ही क्रीड़ा,
आशा और निराशा ही का, केवल है अभिसार।

प्यार करूँ क्यों इस निर्मम से,
निष्ठुर और क्रूरतम जग से,
इस'विषकुम्भ-पयोमुख'घट से,
हट जाऊं मैं इसके मग से,
बन्धन ही बन्धन हैं इसमें, यह केवल है भार।

तुमको हो संसार मुबारक,
प्यार भरा अभिसार मुबारक,
दुःखों का आगार मुबारक,
जाने दो मुझको एकाकी, उस अनन्त के पार।
टूट गए वीणा के तार!

[क्वेटा, जून ३८]

गाने दो

आज मुझे जी-भर गाने दो,
रो रो कर मैं हार गया हूँ. फिर तारों को सुलझाने दो।

जीवन के पहले प्रभात में, रोने का अरमान मिला था,
साथ निराशा, पीड़ा औ' टीसों का, कुल वरदान मिला था,
जन्म मिला था मुझे कदाचित, भावुक बनकर दुख पाने को।

अब तक मैंने कलप-कलप कर अपना समय बिता डाला है,
भूल गया कर्त्तव्य-मार्ग को, सब अपनत्व गँवा डाला है,
अब जीवन की सन्ध्या में क्षण भर कुछ तान बजा जाने दो।

विश्व पूछता—"क्यों हरदम तुम आँसू ढरकाते फिरते हो,
क्यों हरदम पीड़ा-सङ्गिन के प्रियतम बने मस्त रहते हो।
उत्तर-प्रत्युत्तर दूँ कैसे? तनिक खुमार उतर जाने दो।

कैसे कहूँ कि मुझको रोने में सन्तोष मिला करता है।
कैसे कहूँ कि खोने में भी सुख का कोष मिला करता है;
यहाँ तर्क का काम नहीं है, तलछट और चढा जाने दो।
आज मुझे जी भर गाने दो।

[यात्रा में—अगस्त, ३९]

आज़ादी का मूल्य

माँग कर रहा आज जगत है, कवि से कविताओं, गीतों की,
किन्तु, विवश कवि मूक खड़ा है, सोच रहा है अपने मन की।
मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मस्ती में ही उड़ता आया,
जीवन क्या, सुख क्या, दुख क्या, मैं इसको कुछ भी जान न पाया।
सभी लुटाया-प्यार, मधुरता, ममता के भी बन्धन काटे,
पर विधि को तो चैन न आई, चलते चलते भी पर काटे।
लँगड़ाते, घिसटाते, चलते, चला जा रहा, चलना ही है।
किन्तु समझ लो यह शव कवि का, शेष दिखावा, छलना ही है।

× × ×

सोचा था, आज़ादी के दिन, खुश होकर कुछ गीत लिखेंगे,
अपने दिल के अरमानों को, सजा सजा शृंगार करेंगे।
पर विधि को न सुहाया यह भी, उसने मेरी एक न मानी,
कठिन परीक्षा ले ली मेरी, जीवन से की इक मनमानी।
घर छूटा, जननी भी छूटी, पूज्य पिताजी स्वर्ग सिधाये,
गुण्डों, मुष्टण्डों ने उन पर धोखे से विष-छुरे चलाए।
जिसका खाया, उसे दबोचा, यह जग की कैसी निठुराई ?
एक नहीं, दो नहीं, बीसियों ने मिलकर विष-छुरी चलाई।
रक्षक ने ही भक्षक बनकर हाथ रँगे, कैसी लोलुपता ?
घर बैठी माता - भृत्यों की की हत्या, कैसी कायरता !

कैसे कहूँ, सुना जो कुछ, विश्वास नहीं होता मन मेरे।
याद रहेगी युगों-युगों तक, करुण कहानी, शाम सवेरे।
किन्तु, अभी कुछ शेष रह गया, निष्ठुर विधि की निष्ठुरता में,
व्याकुल हृदयों को बहलाने, दिया एक सुत उस विधना ने,
कमल अभी अधखिला हुआ था, नव मुसकान न खिलने पाई,
उधर निठुर विधना ने उसपर अपनी निष्ठुरता दिखलाई।
उसको भी वह छीन ले गया, दो नन्हीं बहनें भी ले लीं,
इन्हीं निठुर हाथों से मैंने, दोनों यमुना भेंट चढ़ा दीं।

× × ×

आज़ादी का मूल्य चुकाया, बलिदानों की अमर कहानी,
दुख, व्याकुलता, टीस, निराशा-जीवन की यह अमिट निशानी,
तुम्हीं बताओ, क्या कहकर मैं, अपने दिल को आज मनाऊँ ?
घर घर में है आग लगी, कह दो, किस किस को आज बुझाऊँ ?
क्या कह कर 'रावी' को भूलूँ, कैसे मैं 'लाहौर' भुलाऊँ ?
कैसे मैं पंजाब भुलाऊँ ? गुरुओं की तप-भूमि भुलाऊँ ?
तक्षशिला भूलूँ कैसे ? कैसे रणजीत-समाधि भुलाऊँ ?
तुम कहते हो, भूलूँ वह सब, पर कैसे मैं उसे भुलाऊँ ?
अमिट कहानी जीवन की वह, कैसे उसको आज भुलाऊँ ?

[दिल्ली, दिसम्बर, १९४७]

क्यों नहीं उल्लास के क्षण ?

आज मन है पूर्ण उन्मन।

है सभी कुछ पास, पर, फिर भी नहीं उल्लास के क्षण।

सूर्य भी है, ज्योति भी है,

चान्द भी है, चान्दनी है,

पूर्णिमा भी पूर्ण विकसित,

प्रकृति भी शृङ्गारमय है, पर नहीं सन्तुष्ट यह मन !

मृग सदा से भागता है,

रेत को जल मानता है,

प्यास - हित मग छानता है,

पर न उसकी प्यास बुझती, प्राण निज करता समर्पण ॥

आज नर को क्या कमी है ?

विपुल धन, घर-बार भी है,

बन्धु - बान्धव, मित्र-परिजन,

है नहीं सन्तोष फिर भी, लालसाओं से छिड़ा रण ॥

लोभ - माया में फँसा है,

सब हड़पना चाहता है,

कुछ न तजना चाहता है,

क्षुत्पिपासा अन्तहीना, मन इसी के आज अर्पण ॥

आज मन है पूर्ण उन्मन।

●

हार ?

मान लूँ क्या हार, साथी, मान लूँ क्या हार ?
विश्व की इस कुटिलता से हो गई तकरार।
आज है सर्वत्र छल का, झूठ का शासन,
आज है सर्वत्र बल का, फूट का शासन,
आज है सर्वत्र दल का, कूट का शासन,
आज है सर्वत्र कल का, लूट का शासन,
फिर न क्यों मन को मनाऊँ, क्यों इसे चञ्चल बनाऊँ ?
आज की इस धाँधली में कौन पाए पार ?
आज तो है जीत उसकी, जो सताए जन,
आज तो है जीत उसकी, जो लुटाए धन,
आज तो है जीत उसकी, जो मिटाए मन,
आज तो है जीत उसकी, जो दिखाए बन,
किसलिए फिर मैं लडूँ, संघर्ष लूँ सबसे अकेला ?
है यही अच्छा कि जग से मान लूँ मैं हार।
हैं सभी आदर्श अच्छे, उच्च हैं सिद्धान्त,
है वही इन्सान, जो विचलित न हो विभ्रान्त,
है वही इन्सान, जो चंचल न हो विश्रान्त,
है वही इन्सान, जो कर्तव्य-पथ पर शान्त,
पर नहीं हिम्मत कि भक्षक को कहें भक्षक,
इसलिए साथी, बताओ, मान लूँ क्या हार ?

'हारकर जीती है' मैंने जीत जीवन की,
है निहित इसमें विजय, पर है पराजय ही,
सोचता, पर, मूर्ख हूँ, पाऊँ विजय मैं भी,
क्यों न बरबस मैं लुटाऊँ, तन तथा मन ही,

आज जो करनी मुझे है, सन्धि जीवन की,
सिद्धि ही मुझको मिले, फिर व्यर्थ क्यों तकरार?
मान लूँ क्या हार, साथी, मान लूँ क्या हार?

संगरिया, फरवरी, १९५२]

क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं ?

तुम्हीं बताओ, साथी, मन के, किस-किसको अब याद करूँ मैं ?
जीवन की रङ्गीन उषा में मधुमय, सुन्दर चित्र बनाए,
मोहक, रञ्जित, मधुरिम, स्वर्णिम, ज्योतिर्मय मधुमास बिताए,
प्यार, दुलार, खुमार भरे वे दिवस गए, पर लौट न आए,
मन के साजन रूठ गए, हाँ, रूठ गए, मन चैन न पाए।

कैसे मन में धीर धरूँ मैं ?

अब क्या कह कर मन बहलाऊँ ? कैसे मैं फिर उन्हें मनाऊँ ?
कैसे उनको मैं लौटाऊँ ? कैसे मन की पीर बताऊँ ?
किसको कहकर क्या समझाऊँ ? किससे अपनी व्यथा सुनाऊँ ?
हृदय चीर किसको दिखलाऊँ ? आने की कह लौट न आए।

मन में क्या अवसाद धरूँ मैं ?
क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं ?

दिल्ली, दिसम्बर, १९४९]

क्या मेरा अपराध ?

तुम्हीं बताओ, आज, सखे, है क्या मेरा अपराध ?
साथी, क्या मेरा अपराध ?
मेरा है अपराध, कि मैंने किया नहीं अपराध।

मेरा है अपराध, यही मैंने समझौता नहीं किया,
मेरा है अपराध कि मैं छलछिद्रों से हूँ दूर रहा,
मेरा है अपराध कि मैं शूलों के मग से नहीं डरा,
मेरा है अपराध कि मैं कण्टकमय पथ पर अड़ा रहा,
मेरा है अपराध कि मैं सच के कहने से नहीं डरा,
मेरा है अपराध कि मैं दुनियादारी में नहीं फँसा,
मेरा है अपराध कि मैं असिधारा-व्रत पर अडिग रहा;
मेरा है अपराध कि मैं झूठे जग से हूँ खूब लड़ा,

तुम्हीं बताओ, आज, सखे, है क्या मेरा अपराध ?
मेरा है अपराध, कि मैंने किया नहीं अपराध।।

मेरा है अपराध, खुशामद तो मैं सीख नहीं पाया,
मेरा है अपराध कि दिन को रात नहीं मैं कह पाया,
मेरा है अपराध न छल से समझौता मैं कर पाया,
मेरा है अपराध कि कोठे भरना सीख नहीं पाया,
मेरा है अपराध कि दोषी को निर्दोष न कह पाया,
मेरा है अपराध कि मानवता को कुचल नहीं पाया,
मेरा है अपराध कि झूठे नारे मैं न लगा पाया,
मेरा है अपराध कि मैं सेवक बन करके क्यों आया ?
तुम्हीं बताओ, आज सखे, क्या है मेरा अपराध ?
मेरा है अपराध यही मैं कर न सका अपराध।

मेरा है अपराध कि मनको चञ्चल मैं न बना पाया,
मेरा है अपराध कि रक्षक बनकर दंभ न कर पाया,
मेरा है अपराध कि निर्मम बनकर हूँ मैं टकराया।
मेरा है अपराध कि मैं आँखों को बन्द न कर पाया,
मेरा है अपराध कि मैं कानों को बन्द न कर पाया,
मेरा है अपराध कि मैं अपना गुणगान न कर पाया,
तुम्हीं बताओ, आज सखे, है क्या मेरा अपराध ?
मेरा है अपराध, कि मैंने किया नहीं अपराध ?

संगरिया (राजस्थान) फरवरी. १९५२]

भ्रांति

तुम कहते हो शाँति जिसे,
मैं कहता हूँ भ्राँति उसे !

मचा हुआ है हाहाकार,
भीषणतर है अत्याचार।
दीन जनों की मची पुकार,
निर्दयता का है अभिसार।

क्या कहता जग शाँति इसे ?
मैं कहता हूँ भ्राँति उसे !

न्याय दास धनवानों का,
शासन है बलवानों का।
ईश्वर वैभववालों का,
धर्म दास श्रीमानों का।

कहता जग क्या शाँति इसे ?
सभी कहेंगे भ्राँति इसे !

क्वेटा, अगस्त, ३८]

मज़दूर

मज़दूर की कहानी, मज़दूर की ज़बानी!
उठता हूँ मुँह अँधेरे,
चलता बड़े सवेरे।
करता हूँ काम दिन भर,
आराम है न क्षण भर।
सन्तोष है इसी में, करता न बदज़बानी।
मज़दूर की कहानी, मज़दूर की ज़बानी!

मेरी न चाहना कुछ,
मेरी न कामना कुछ।
दुख - सुख मुझे बराबर,
हँसना - रुदन बराबर।

बस काम ही की चिंता, कैसा परार्थ दानी?
मज़दूर की कहानी, मज़दूर की ज़बानी!
वर्षा हो चाहे कैसी?
आँधी भले हों जैसी?
सर्दी हो चाहे कैसी?
गर्मी हो चाहे जैसी?
मुझको फ़िकर नहीं है, छुट्टी कभी न मानी।
मज़दूर की कहानी, मज़दूर की जबानी!

ये सब चलेगी कबतक ?
ये सब निभेगी कबतक ?
फैली अन्धेर-गर्दी ?
कोई न मेरा दर्दी।

मैं सो चुका हूँ काफ़ी, अब है अलख जगानी।
मज़दूर की कहानी, मज़दूर की ज़बानी !
सुनलो ऐ सुननेवालो,
बिगड़ी हुई बना लो।
जुल्मो-सितम का मारा,
फ़ाकाकशी से हारा।
मज़दूर जागता है, उठने की उसने ठानी।
मज़दूर की कहानी, मज़दूर की ज़बानी !

दिन - रात कष्ट सहता,
मालिक का काम करता।
तब भी नहीं है रोटी,
सूखी है बोटी - बोटी।

अब भी तनिक विचारो, पूञ्जीपति, ओ मानी !
मज़दूर की कहानी, मज़दूर की ज़बानी।
बोलो ये' कर्म कैसा ?
आखिर ये' धर्म कैसा ?
तुम बैठ धन कमाओ,
लेटे ही बड़बड़ाओ।

हम काम करते जाएँ, कौड़ी मिली न कानी।
मज़दूर की कहानी, मज़दूर की जबानी!

जिसने तुम्हें बनाया,
उसने हमें बनाया।
हम सबका है वह मालिक,
हम सबका है वह ख़ालिक,

ऐसी चलेगी कबतक ? आफ़त है ज़िन्दगानी।
मज़दूर की कहानी, मज़दूर की ज़बानी!

लाहौर, सितम्बर, ३८]

नया विकास चाहिए !

नए समाज के लिए, नया विधान चाहिए।
नए सुधार चाहिएँ, नए विचार चाहिएँ।
जागता है एशिया, नया प्रयाण चाहिए।

नया विकास चाहिए, नया हुलास चाहिए,
नया लिबास चाहिए, नया ही' रास चाहिए,
नए स्वरों के साथ हो, नवीन गान चाहिए ?

नई जवानियाँ उठीं; नई रवानियाँ उठीं;
नई निशानियाँ पगीं, रीतियाँ नई जगीं;
जग रहे समाज को, नया सम्मान चाहिए।

जीर्ण - शीर्ण हो रहा, लड़खड़ा है चल रहा,
सोच - सोच, पग बढ़ा, देख-भाल बढ़ रहा,
रूढ़ियाँ हैं मिट रहीं, नया निशान चाहिए।

नया ही ध्यान चाहिए, नया ही' स्थान चाहिए।
नए समाज के लिए, नया विधान चाहिए।

नया निर्माण करना है

नया संसार रचना है !

नई आशा हो' जीवन में, नया उल्लास हो मन में।
नया हो तंत्र, नव-जीवन, नया हो यंत्र, नव कण - कण।

नई दुनिया बसानी है, नई धूनी रमानी है।
नई मंज़िल बनानी है, नई कलियाँ खिलाना हैं।

पुरानी रूढ़ियाँ छूटीं, पुरानी शृङ्खला टूटीं।
पुरानी धारणा छूटी, पुरानी मान्यता टूटी।

नया हो राग जीवन में, नया हो फाग जीवन में,
नई हो आग जीवन में, नया अनुराग हो मन में।

नई हो भावना सब में, नई हो चाहना मन में,
नया आह्लाद जीवन में, नया उन्माद जीवन में।

नई रुनझुन, नई थिरकन, नई धड़कन, नई सिहरन,
नई भाषा, नई आशा, नया उत्साह हो क्षण-क्षण।

नवल झङ्कार हो मन में, नई टङ्कार जीवन में,
नया उत्साह जन - जन में, नई हो चाह जीवन में।

मरुस्थल को बसाना है, अनुर्वर को उगाना है।
अभी तो खोज करनी है, कहाँ अब मौज करनी है ?

ग़रीबी को भगाना है; अशिक्षा को मिटाना है।
विषमता को हटाना है, नया भारत बनाना है।

निरन्तर काम करना है, सँभल कर पाँव धरना है।
सदा आगे ही' बढ़ना है, नहीं पीछे को, मुड़ना है।

नया निर्माण करना है !

●

कुटी और महल

यह कुटी है, वह महल है।

इधर 'हा' 'हा', और पस्ती,
उधर खुशहाली व मस्ती,
प्यार से भरपूर बस्ती,
इधर रोटी की फ़िकर है, भूख से पड़ती न कल है।

उधर नौकर हैं अनेकों,
हुक्म स्वामी का टले क्यों ?
'जी - हुज़ूरी' से बचें क्यों ?
कभी शर्वत, कभी ह्विस्की, बन रहा जीवन तरल है।

इधर कैसी बेबसी है ?
हाय निर्धनता बसी है !
भूख की ज्वाला लसी है,
पेट पापी का करें क्या, बन गया भोजन गरल है।

उधर 'प्याला', इधर 'ज्वाला',
उधर 'हाला', इधर 'हाँ, ला',
उधर 'मत ला', इधर 'ला, ला',
है अजब संसार साथी, इधर 'कलकल', उधर 'कल' है।

क्वेटा, अगस्त, ४०]

●

प्रगति की ओर

मानव प्रगतिशील प्राणी है, बस आगे ही बढ़ता रहता।
वर्तमान से तुष्ट नहीं है, हो अधीर चलता ही रहता।

रेल बनाई, यान बनाए, पर्वत भी आधीन बनाए,
विद्युत् को वश में कर डाला, निज गति पर सन्तुष्ट न रहता।

इञ्जन गाड़ी को धकेलता, मानव इञ्जन को वश करता,
ध्वनि को भी वश में कर डाला, छानबीन करता ही रहता।

वायरलैस को इसने खोजा, भू-आकर्षण को भी खोजा,
सागर की दूरी को जाना, पर्वत-शृङ्ग कूद कर फाँदा।

हार मानना कब है सीखा ? पीठ दिखाना कब है सीखा ?
सीखा इसने आगे बढ़ना, पीछे जाना कब है सीखा ?

वृक्ष उगाए, धरती नापी, जंगल काटे, नहर बनाई।
थल को जल, जल थल कर डाला, इसकी यह गति ठहर न पाई।

अद्भुत है मानव की रचना, अद्भुत इसकी बुद्धि निराली,
आविष्कार किए हैं कितने ? मानव की गति कब है हारी ?

मानव साहस का पुतला है, मानव मननशील प्राणी है,
लोहे की पटरी बिछवाई, पुल बनवाए, सुरँग बनाई,

जगह - जगह पर पर्वत काटे, सड़कों पर ट्रामें चलवाई।
मोटर, ट्राली, यान बनाए, टेलीप्रिंटर, तार बनाए,

टेलीविज़न - एक्सरे आए, राकेट, अणुबम भी बनवाए,
लीला है इसकी अति भारी, देख - देख मन कौतुक पाए।

मानव आगे बढ़ा जा रहा, पग - पग सँभला चला जा रहा,
गिरता, पड़ता, चढ़ा जा रहा, शूल - फूल सम मसल जा रहा।

एकाकी भी धीर न हारा, आशा - दृढ़ता - मार्ग सँभाला,
असफल हो साहस नहिं बिसरा, सफल मार्ग अपना कर डाला।

ट्रैक्टर से खेती कर डाली, मरुस्थल को श्यामल कर डाला,
मानव आफ़त का परकाला, नर ने जग को ढूँढ़ निकाला।

धन्य - धन्य मानव बल-शाली, तेरी महिमा अजब निराली,
छान चूका तू डाली - डाली, तूने अनुपम बुद्धि सँभाली।

तूने टैंक बनाए अनुपम, तूने शस्त्र बनाए निर्मम,
तेरी गति है अद्भुत, अनुपम, तेरी गति है तीव्र मनोरम।

तूने है रवि - शशि को बाँधा, तूने प्रकृति-नटी को फाँदा ?
तेरी प्रतिभा, अतुल निराली, तू सारे जग का है माली ?

तेरा है कुछ भेद न पाया, तेरी है अनुपम यह माया,
तेरा है सन्देश—'बढ़े जा', तेरा है सम्बल—'चलता जा।'

मानव है निज भाग्य-विधाता, मानव है पुरुषार्थ जगाता,
मानव है सम्बल साहस का, मानव आगे कदम बढ़ाता।

●

एशिया अब जागता है

राज्य पश्चिम ने सँभाला, विश्व का वैभव सँभाला,
विश्व का मग छान डाला, विश्व को है रौंद डाला,
सभ्यता - नेतृत्व करके, आज पश्चिम भागता है।

एशिया की नींद - टूटी, एशिया - तन्द्रा है टूटी।
विश्व ने सम्पत्ति लूटी, सभ्यता - भाषा है छूटी।
बन गया दानी भिखारी, स्वत्व अपने माँगता है।

आज है साम्राज्य-लिप्सा, आज है अधिकार-इच्छा,
आज है वैभव - बुभुक्षा, आज है यश मान इच्छा
लालसा है आज पद की, त्याग निज फल चाहता है।

लोक-तृष्णा मिट न पाती, पर खुशामद छुट न पाती,
झूठ, छल, बल हैं पनपते, रिश्वतें, सम्बन्ध आते,
आज है केवल प्रदर्शन, सत्य सम्बल चाहता है।।

करवटें लेता ज़माना, भूत, बीता है फ़साना,
जिन्दगी है आशियाना, लग रहा आना व जाना,
आज मानवता सिसकती, न्याय मानव चाहता है।।

पूर्व काफ़ी लुट चुका है, पूर्व का दम घुट चुका है,
वंश का क्रम मिट चुका है, सभ्यता-क्रम लुट चुका है,
हँस रहा है आज पश्चिम, पूर्व जीना चाहता है।।

●

नया राष्ट्र है आज पनपता

नया राष्ट्र है आज पनपता,
नया तंत्र है आज मचलता।
प्रगति ओर बढ़ रहा ज़माना, गति इसकी अब नहीं रुकेगी।

दास नहीं होगा अब मानव, शोषित नहीं रहेगा मानव,
पीछे नहीं हटेगा मानव, उछल बढ़ेगा आगे मानव,
आगे ही बढ़ना है जीवन, जीवन-गति अब और बढ़ेगी।

पूर्व रुकेगा आज न पथ से, पूर्व बढ़ेगा निज सम्बल से,
पूर्व रहेगा शाँति - दया से, घृणा करेगा नहीं किसी से,
घृणा किसी की नहीं चलेगी, वैर भावना नहीं बढ़ेगी।

भारत जागा, चीन जगा है, ब्रह्मा औ' ईरान जगा है,
लंका, पाकिस्तान जगा है, रूस और जापान जगा है,
पश्चिम की अब नहीं चलेगी, चर्चिल की अब नहीं चलेगी।

भारत को है खूब दबाया, चीन देश को खूब दबाया।
लड़ा लड़ा कर मूर्ख बनाया, आपस में है हमें भिड़ाया,
सावधान हे पश्चिम वालो ! कूटनीति अब नहीं चलेगी।

सोने की चिड़िया था भारत, धन्य- धान्य से भरे हुए घर,
प्रकृति पालना देश मनोहर, पीड़ित है पृथ्वी का अन्तर,
आज हुआ दुर्भिक्ष-ग्रस्त यह, पर अब ऐसी नहीं चलेगी।

चूस लिया धन-धान्य हमारा, लूट लिया व्यापार हमारा,
छीन लिया अधिकार हमारा, पंगु हुए हम, चली दुधारा,
सोई किस्मत जाग उठेगी, सोई हिम्मत जाग उठेगी।
सुप्त सिंह अब जाग रहा है, अँगड़ाई ले उठ बैठा है,
आज ज़माना बदल रहा है, भूला निज बल उमड़ रहा है,
रूढ़ि पुरातन टूट रही हैं, जनता आगे आज बढ़ेगी।
कड़ियाँ भी वे टूट रही हैं, सीमाएँ भी छूट रही हैं,
बढ़ा आज है पग मानव का, रूढ़ि पुरातन नहीं चलेगी।

●

आग लगा दें !

जहाँ प्रेम की चाह नहीं है, जहाँ नियम-निर्वाह नहीं है,
जहाँ बन्धु-परवाह नहीं है, जहाँ हृदय की राह नहीं है।
ऐसे जग को फूंक उड़ा दें, ऐसे जग को आग लगा दें॥
जहाँ नहीं ममता की बातें, जहाँ नहीं समता की बातें,
जहाँ कूटछल की ही घातें, जहाँ विषमता की हों घातें।
ऐसे भव से पिंड छुड़ा लें, ऐसे जग को आग लगा दें॥
जहाँ रंग का भूत समाया, काला गोरा भेद समाया,
मुँह-देखे की प्रेम कहानी, जहाँ योग्यता हो अनजानी।
ऐसे जग को हम क्या जानें ? ऐसे जग को आग लगा दें।
ईष्या, द्वेष, जहाँ नस नस में; भेद, कपट हो पुरुष पुरुष में,
भाषा, वेष न अपने वश में, धर्म जहाँ शासन-अंकुश में।
ऐसे भव की ममता त्यागें, ऐसे जग को आग लगा दें॥

●

हिंसा की ज्वाला

जग दग्ध हुआ है हिंसा से, अणु अणु में हिंसा हैं व्यापक।
है विश्व दुखी, हिंसा, छल से, हिंसा की ज्वाला अति घातक।
जग व्याकुल है अति दुखसे भी, जग व्याकुल है अति सुखसे भी,
हो दूर जगत से दुख-सुख यह, हो राज्य प्रेम ममता का ही।
मन छल - छिद्रों से भरा हुआ, केवल मीठी - मीठी बातें,
दम्भी मानव बन गया आज, चलती रहतीं हलकी घातें।
यम - नियमों की बातें केवल, पर जीवन में व्यवहार नहीं,
व्यापक जीवन में कृत्रिमता, है स्वार्थ स्नेह का भाव नहीं।
तृष्णा, आकांक्षा घेर रही, दिन रात मनुज को जीवन में,
मानव कठपुतली सा फिरता, सन्तोष नहीं इसको मन में।
है शाँति - शाँति की गूँज लगी, मन में पर द्वेष भरा रहता,
मौखिक बातें हैं ये केवल, मानव अपने को है ठगता।
रिश्वत औ' चोर-बज़ारी है, हर चीज़ मिलावट से मिलती,
शत प्रति शत ख़ालिसका दावा, पर चीज़ नहीं ख़ालिस मिलती।
हो रहा प्रदर्शन दलबल का, मानवता है सिसकी भरती,
मानव दानव बन गया आज, दानवता है हर्षित होती।
अणुबम बनते ही रहते हैं, बातें हैं रोक लगाने की,
व्यापक जीवन में कृत्रिमता, है स्वार्थ, स्नेह का मेल नहीं।
इस जग में हिंसा है फैली, है वैर द्वेष घर घर घातक,
कोई न किसी का है साथी, हो रहा आज केवल नाटक।
हिंसा की ज्वाला अति घातक।

●

अजीब हाल है यहाँ !

एक ओर भूख है, एक ओर खूब है।
व्यर्थ सड़ रहा कहीं, कोई मर रहा कहीं।
भूख की पुकार है, मनुज रहा कराह है।
साधनों की न्यूनता, भाग्य की, है दीनता।

वसुन्धरा है' वसुमती, वसुन्धरा है' भाग्य श्री।
वसुन्धरा है' गुप्त धन, वसुन्धरा है' भाग्य धन।
वसुन्धरा है' कामदा, वसुन्धरा है' भाग्यदा।
असीम धन कहीं पड़ा, कहीं अभाव है पड़ा।

अजब समाजवाद है, अजीब साम्यवाद है।
अजीब राम-राज्य है, दुःख है विषाद है।
व्यर्थ की है कल्पना, व्यर्थ की है जल्पना।
बिलख रही मनुष्यता, तड़प रही मनुष्यता।

निरीह बन कराह' रही, क्रूरता ही' छा रही।
दुष्टता की जीत है, अनीति की ही भीति है।
अजीब हाल है यहाँ, परार्थ है यहाँ कहाँ ?
खुदी में मस्त सब यहाँ, स्वार्थ है जहाँ तहाँ।

●

मेरे किसान

मेरे किसान, शत शत प्रणाम !

भारत वसुन्धरा के रक्षक, चालिस करोड़ जनमत मस्तक,
भूपाल तुम्हीं, गोपाल तुम्हीं, भारत माता के लाल तुम्हीं।
तेरा अभिनन्दन भू-ललाम।

वर्षा हो, गर्मी-सर्दी हो, तुम तनिक न श्रम से थकते हो,
दिन भर अपना क्रम करते हो, फिर भी प्रभु-निर्भर रहते हो,
है नहीं कहीं तुम को विराम।

'कर' से है पीठ लदी तेरी, ऋण से न कभी छुट्टी तेरी,
निर्धनता है तेरी चेरी, लोगों की नित रहती फेरी,
विश्राम न तुमको आठ याम।

निद्रा, आलस्य, अशिक्षा से, तम्बाकू, बीड़ी 'ओसर'[1] से,
चोरी, वटमारी, रोगों से, आपस के कलह-विवादों से,
जीवन तेरा है नरक-धाम।

तू अपना भाग्य-विधाता बन, तू अपना पथ-निर्माता बन,
तू सारे जग का त्राता बन, तू विश्वम्भर औ' दाता बन,
तेरा भविष्य है सुख-ललाम।

तूने समझे अधिकार नहीं, तूने जाना अपकार नहीं,
तू स्वामी है, आधीन नहीं, तू धरणीधर है, दीन नहीं,
कर जीवन अपना स्वर्ग-धाम,
मेरे किसान, शत शत प्रणाम।

संगरिया, १९५१]

---

१. मृत्यु-भोज

ज़मीन दो, ज़मीन दो

भूमि-दान चल रहा, भूमि-यज्ञ चल रहा,
धर्म - कार्य चल रहा, दान - कार्य चल रहा,
किसान को ज़मीन दो, मजूर को जमीन दो।
युग की' यह पुकार है, दीन की पुकार है,
विवश की पुकार है, मन हुआ उदार है,
भूमि-हीन के लिए, ज़मीन दो, ज़मीन दो।
दान-धर्म-भावना, मन की, शुभ है, कामना,
जन - उदार भावना, जन-विचार भावना,

यज्ञ भूमि-दान का, यज्ञ है किसान का,
यज्ञ है महान का, यज्ञ है जहान का,
भूमिहीन माँगता, भू-प्रदान तुम करो।
दरिद्र के लिए उठो, भूमि दान तुम करो।
ज़मीं किसान चाहता, ज़मीं मजूर चाहता,
ज़मीं अनाथ चाहता, ज़मीं ग़रीब चाहता,
प्राणिमात्र के लिए, स्वार्थ - त्याग तुम करो।
ज़मीन दो, ज़मीन दो, ज़मीन दो, ज़मीन दो।

सेवकों की मण्डली, गाँव गाँव जा रही,
'माँग आज की है' यह, पुकार आज आ रही।
अमीर का, ग़रीब का, समान योग चाहिए,
भूमि-यज्ञ के लिए उदार भाव चाहिए।

माँगता है 'सन्त'[1] आज, पूर्ण योग दो उसे,
उदार दान-शील बन, भूमिदान दो उसे।
त्याग भाव से स्वयं, कुछ न कुछ ज़मीन दो,
ज़मीन दो, ज़मीन दो, ज़मीन दो, ज़मीन दो,

[दिल्ली; १-११-५३]

---

१. आचार्य विनोबा

समस्याओं का बोझ

दब रहा मानव, त्रस्त है मानव,
पस्त है मानव, मस्त है दानव।
चल रहा ताण्डव, चल रहा नर्तन,
चल रहा गर्जन, चल रहा तर्जन।
क्या करे मानव ? मूक है मानव।
है विवश मानव, चुप खड़ा मानव।
भार ढोता है, फिर भी खोता है,
पीर बोता है, व्यर्थ रोता है।
रात दिन मरता, पेट कब भरता ?
कल नहीं पड़ता, चैन कब मिलता ?
है बहुत मजबूर, रास्ता है दूर।
थक रहा हो चूर, भाग्य इसका क्रूर।
भार ढोता है, व्यर्थ रोता है !

सावन के घन

बरस बरस सावन के ओ घन,

बून्द बून्द क्या बरस रहा रे,
अविरत जलधारा बरसा रे,
ग्रीष्म-तप्त जन को दुलरा रे, बरसे जा हे घन तू क्षण क्षण।

चातक तुझको सदा बुलाता,
स्वाति बून्द ही उसे सुहाता,
'पी पी' कह पपिहा बिलखाता, प्यास हरो इनकी भी जलकण।

कृषक है' तेरी माला जपता,
तेरी आशा पर है मरता,
तेरे बलपर ही श्रम करता, एकमात्र तू उसका प्रिय धन।

तेरा मेघ दूत मन भाया,
यक्षदूत बन कर वह आया,
यक्षिणि को सन्देश सुनाया, विरहि-जनोंका तू ही प्रियजन।

ताल, कूप, बावलियाँ भर दे,
स्थलमय जगको जलमय कर दे,
क्षिति-संताप सकल तू हर ले, कर दे शान्त जगत का तन मन।

आज जगत में आग लगी है,
भीषणतम रणज्वाल जगी है,
'त्राहि-त्राहि' ललकार मची है, बरसा सुधाधार जीवन-धन।

जग में फिर से प्रेम भाव हो,
कलह-द्वेष, सन्ताप नाश हो,
फिर से सब में बन्धु-भाव हो, जग से दूर भगे रण क्षण क्षण।

सरदार शहर]

●

चल रहा है कारवाँ !

जा रहा है काफ़ला, आ रहा है काफ़ला,
जा रहे जवान हैं, आ रहे जवान हैं,
चल रहा है कारवाँ, बढ़ रहा है कारवाँ,
नर-समाज चल रहा, चल रही है नारियाँ,
चल रहा है यात्रि-दल, चल रहे हैं बाल-वृद्ध।
पग उठा हैं बढ़ रहे, लक्ष्य ओर चल रहे,
ख़ुशी अजीब छा रही, दिली मुराद आ रही।

भूलती थकान है, भूलती चढ़ान है,
मार्ग भी है' अटपटा, पर्वतों की' शृङ्खला,
उतार हैं कभी यहाँ, चढ़ाव है कहीं वहाँ,
बह रही नदी कहीं, झर रहे निर्झर कहीं,
स्वच्छ नीर बह रहा, नील नभ है हँस रहा,
गगन भी' नील वर्ण है, नदी भी' नील वर्ण है,
हरीतिमा है' छा रही, पथिक को' है लुभा रही।

प्रसन्न हैं मनुज यहाँ, प्रसन्न हैं विहग यहाँ,
स्वतंत्र है पवन यहाँ, स्वतंत्र आज मन यहाँ,
स्वतंत्र है मनुज यहाँ, स्वतंत्र है दनुज यहाँ,
छटा अपूर्व है यहाँ, अशांति है यहाँ कहाँ ?
प्रफुल्ल आज है मही, प्रफुल्ल आज हैं गृही,
यात्रियों की भीड़ है, साधुओं की भीड़ है,
चट्टियों की धूम है, पंडितों की गूंज है।

मस्त आज हैं सभी, मस्त आज है मही,
ज़िन्दगी कृतार्थ है, ज़िन्दगी परार्थ है,
थक गया जहाँ मनुज, रुक तनिक वहाँ गया,
वहीं पड़ाव बन गया, देर कुछ में चल पड़ा,
कुछ पगों पै' चल रहे, कदम-कदम हैं' बढ़ रहे,
डाँडियों में जा रहे, कंडियों में जा रहे,
हाथ में छड़ी उठा, सिर पै' भार लद रहा।

झूम - झूम चल रहे, मस्त हो के' बढ़ रहे,
हृदय में' एक कामना, है' मन में' एक साधना,
यात्रा तीर्थ हो सफल; मार्ग में न हों विफल,
देवता मना रहे, प्रार्थना हैं' कर रहे,
पूर्ण होवे कामना, पूर्ण होवे साधना,
पूर्ण होवे चाहना, पूर्ण होवे भावना,
स्वर्ग ही है देश यह, पुण्य-भूमि देश यह।

पुण्य मातृ - भूमि है, पुण्य पितृ - भूमि है,
देव-जन्म-स्थान यह, आर्य-जन्म-स्थान यह,
पूर्वजों का पुण्य-स्थल, पूर्वजों का कर्म-स्थल,
पांडवों की जन्मभूमि, पूर्वजों की जन्मभूमि,
अपूर्व है छटा यहाँ, अपूर्व है घटा यहाँ,
अपूर्व शांति है यहाँ, अशांति मन को है कहाँ?
नहीं कभी उदास मन, नहीं कभी निराश मन।

हर्ष हैं मना रहे, मन के' गीत गा रहे,
मनुज सभी प्रसन्न हैं, नहीं कभी विषण्ण हैं,
खुशी से' मीत बढ़ रहे, खुशी के गीत चल रहे,
'हो' जय विशाल बद्रि की, 'हो जय श्री'तुङ्गनाथ की',
हो जय केदारनाथ की, हो जय प्रयागराज की,
हो जय नगाधिराज की, हो जय सहस्रधार की,
गंगोत्तरी की जय सदा, यमुनोत्तरी' की जय सदा।

सरस्वती अमर रहे, भगीरथी अमर रहे,
कुण्ड हैं गरम कहीं, शीत नीर है कहीं,
अपूर्व दृश्य है यहाँ, अपूर्व कल्पना यहाँ,
भूलता है जग यहाँ, अपूर्व शांति है यहाँ,
दूर - दूर से यहाँ, आ रहे हैं कारवाँ,
पूर्व बंग देश से, दक्षिणी प्रदेश से,
पश्चिमी प्रदेश से, उत्तरी प्रदेश से।

पञ्चनद – प्रदेश से, मध्य के प्रदेश से,
द्राविड़-प्रदेश से, गुर्जर-प्रदेश से,
नव राजस्थान से, पूर्व आसाम से,
उड़िसा - बिहार से, हिमाचल, भूपाल से,
आ रहे कश्मीर से, हैदराबाद से,
नव आन्ध्र देश से, पेप्सू प्रदेश से,
लङ्का औ' मैसूर से, बर्मा औ' नेपाल से।

आ रहे हैं शूरमा, बढ़ रहे हैं शूरमा,
आ रहा है काफ़ला, जा रहा है काफ़ला,
चल रहा है कारवाँ, बढ़ रहा है कारवाँ।
प्रात है सुहावनी, रात मन को भावनी,
प्रकृति शृङ्गार है, मोहक विहार है,
'जय श्री बद्रीश की', जय श्री केदार की',
'जय भोलानाथ की', 'जय तीर्थराज की।'

चार धाम हैं प्रसिद्ध, तीर्थ स्थान हैं ये' सिद्ध,
हिम कहीं है जम रही, बून्द-बून्द झर रही,
मेघ नभ में' छा रहे, सूर्य को छिपा रहे,
धन्य-धन्य भक्तगण, धन्य-धन्य यात्रिगण,
जीवन यह कृतार्थ हैं, जीवन यह परार्थ है,
कष्ट भी अपार है, बाधा बेशुमार हैं,
चल रहा है काफ़ला, बढ़ रहा है काफ़ला।

शाम हो गई जहाँ, काफ़ला रुका वहाँ,
मिट गई थकान है, दो घड़ी आराम है।
भोरकाल जब हुआ, काफ़ला है चल पड़ा,
उठ खड़े हुए सभी, थकान दूर हो गई,
इक नया है हौसला, बढ़ रहा है काफ़ला।
हो गई जहाँ दुपहर, गए' मनुज वहीं ठहर,
ले लिया आ'राम फिर, दूर है थकान फिर।

स्नान है किया वहाँ, खा लिया है कुछ वहाँ,
चट्टियों को छूट है, ग्राहकों की लूट है,
पेट माँगता सदा, उसे नहीं तनिक पता,
दूध का तो काल है, शाक का भी काल है,
है बहार आलू' की है पुकार ब्यालू' की,
चाय की बहार है, केतली तैयार है,
तीन बज गए जहाँ, काफ़ला चला वहाँ।

शाम हो गई जहाँ, काफ़ला रुका वहाँ,
इसी' प्रकार है बढ़ी, यात्रियों की' यह छड़ी,
दिन औ' रात बीतते, मास भी हैं' हो चले,
पूर्ण हो गया सफ़र, काफ़ला रुका उधर,
वापिसी की भीड़ है, मन हुआ अधीर है,
शीघ्र घर हैं' पहुंचना, शीघ्र घर है लौटना,
यह सभी की कामना, यह सभी की भावना।

बढ़ रहा है काफ़ला, चल रहा है काफ़ला,
चल रहा है कारवाँ, बढ़ रहा है कारवाँ।
गर्मियों में धूम है, सर्दियों में सून है,
चल रहा है क्रम यही, घूमती सदा मही,
धर्म - चक्र घूमता, सृष्टि चक्र - घूमता,
चल रहा यह' जग सदा, कौन है अचल भला ?
घूमता मनुज सदा, नदी, पहाड़, कन्दरा।

छानता मही कभी, लाँघता जलधि कभी,
कूदता है अद्रि भी, नभ में' उड़ रहा कभी,
प्रयत्नशील यह रहा, प्रगति की' ओर बढ़ रहा,
नवीन खोज चल रही, नवीन होड़ चल रही,
नवीन दौड़ लग रही, नई दिशा है' बढ़ रही,
मनुष्य बढ़ रहा सदा, मनुष्य चल रहा सदा,
मनुष्य कर्म कर रहा, पथिक बना है' बढ़ रहा।

उसे नहीं है ठहरना, उसे नहीं है बैठना,
उसे सदैव घूमना, उसे सदैव झूमना,
ज़िन्दगी की दौड़ है, साहसी की होड़ है,
कर्मक्षेत्र ज़िन्दगी, धर्मक्षेत्र जिन्दगी,
ज़िन्दगी बहार है, ज़िन्दगी बयार है,
ज़िन्दगी पड़ाव है, ज़िन्दगी कटाव है,
ज़िन्दगी तू'फ़ान है, ज़िन्दगी संग्राम है।

ज़िन्दगी विश्राम है, ज़िन्दगी अंजाम है,
ज़िन्दगी है इक नदी, सर्वदा है' चल रही,
रुकना' जानती नहीं, ठहरना कहीं नहीं।
ज़िन्दगी समुद्र है, साक्षात् रुद्र है,
शांति है यहाँ कहाँ ? क्रांति है यहाँ कहाँ ?
ज़िन्दगी का कारवाँ, बढ़ रहा यहाँ, वहाँ,
ज़िन्दगी का गुलसिताँ, है बहार, है खिज़ाँ।

बढ़ रहा है कारवाँ, चल रहा है कारवाँ।

श्री बद्रीनाथयात्रा, मई, १९५३]

●

क्या किया जाए ?

क्या किया जाए, क्या किया जाए ?

'आया वसन्त का है मौसम', कहतीं चिड़ियाँ यह बोल-बोल,
'ऋतुराज पधारे हैं देखो', 'पी'-'पी' पपिहा है रहा बोल,
पर मेरे तो इस उपवन में, पतझड़ ही का है ज़ोर शोर,
कोई बतला दे तो हमको, कैसे अब दुख में जिया जाए।
क्या किया जाए……।

'हिन्दी-हिन्दी' सब चिल्लाते, तो भी हिन्दी पनपी न यहाँ,
वे 'उर्दू' लेकर हैं आते, अंग्रेज़ी का शासन है' यहाँ,
है एक तमाशा यह वेढव, हिन्दी का है अस्तित्व कहाँ ?
भाषाओं की इस उलझन को, कैसे अब सुलझा लिया जाए ?
क्या किया जाए……।

हिन्दू-मुस्लिम का फ़र्क यहाँ, भाषाओं का भी फ़र्क बना,
वह देखो हिन्दू का ईश्वर, मुस्लिम का 'अल्ला' अलग बना,
दोनों की डफली अलग - अलग, दोनों का नारा अलग बना,
इस 'अल्ला अकबर', 'राम राम' में कैसे एका किया जाए ?
क्या किया जाए……।

सब नेता चिल्लाते रहते, करना न कभी भी बाल - विवाह,
सरकार मनाही करती है, तो भी होते हैं बाल - विवाह,

रोती रहती विधवा हैं कहीं, बूढ़ों के भी होते हैं विवाह,
फैला अनीति का है ताँता. कैसे सुधार कर लिया जाए ?
क्या किया जाए......।

हत-भाग्य देश यह है मेरा, सौ में दस ही तो साक्षर हैं,
निःशुल्क भले ही शिक्षा हो, तो भी रहते वे अनपढ़ हैं,
कुछ बात न पूछो महिला की, वह तो पर्दे में बन्द पड़ी,
फिर बोलो यह कैसा वसन्त ! पतझड़ न इसे क्यों कहा जाए ?
क्या किया जाए......।

नेता मेरे सब सड़ते हैं, जेलों की तंग गुफ़ाओं में,
हम नये बनाते महल यहाँ, रहते नित नई हवाओं में,
मेरे अरमान पड़े रहते, अन्तर की चार-दिवारी में,
ताला जब मुख पर लगा हुआ, तब मौन रूप रह लिया जाए।
क्या किया जाए......।

मेरा मन-मोर चहकता है, ऋतु परिवर्तन के स्वागत को,
मेरे पर फड़ - फड़ करते हैं, स्वच्छन्द जगत में उड़ने को।
आशा-पूनम-उजियाली में, गम्भीर निराशा 'सोती है,
'बस अन्त' करो इस चर्चा को, यह उत्सव ही कर लिया जाए।
क्या किया जाए, क्या किया जाए ?

सरदारशहर (राजस्थान)
बसन्तोत्सव, १९४४

प्रकृति बाला

सज रही है प्रकृति-बाला, कर रही शृङ्गार अपना।
खो गई मादक पवन में, देखती है आज सपना।
शस्य-श्यामल पट सजाए, नील साड़ी ओढ़ तन पर,
मुक्त आँचल को सँजोए, ढाँपती सौन्दर्य अपना।
शान्त मुख, गम्भीर आशय, भावनाओं से तरंगित,
इन्द्रधनु सा वेष पहने, कर रही शृङ्गार अपना।
बावली बन, नेत्र फैला, देखती है शशि-वदन को,
बांकपन से मुग्ध करती, भेंट कर उपहार अपना।
कर रही शृङ्गार अपना।

पहलगाम, १९ अगस्त, १९४६]

नौका-विहार

छल - छल फुहार, कल - कल विहार,
छप - छप बहार, चल - चल कछार, नौका विहार।
डगमग, डगमग, डोले पग पग,
छल छल, छप छप, जल-मध्य धार, नौका विहार।
आकाश नील, जलधार नील,
चलता समीर, जल की बहार, नौका विहार।
जल ही जल है, निर्मल जल है,
शीतल जल है, शीतल बयार, नौका विहार।

डलझील, श्रीनगर,
४ अगस्त, १९४६]

वसन्ती साज

वसन्ती साज है छाया, कि घर घर हर्ष है छाया,
पुनः ऋतुराज है आया, वसन्ती फाग भी लाया,
खिली है फूल की क्यारी, कि छाई आज हरियाली,
प्रकृति का साज है छाया, निराली ईश की माया।

खुशी है सब तरफ़ छाई, घरों में भी खुशी आई,
सभी खुश हैं नज़र आते, पुरुष हों, बाल या जाया।
पतङ्गों को उड़ाने में, सभी हैं लीन बालकगण,
पतंगों के लड़ाने में, लगा है ध्यान मन-भाया।

हकीकत का हुआ बलिदान, इस दिन एक नगरी में,
मुसलमानी न अपनाई, न अपना धर्म तज पाया।
हकीकत था अभी बालक, थी' दृढ़ता खूब पर उसमें,
अमर आत्मा का' विश्वासी, नहीं प्राणों का मोह' लाया।

हुआ बलिदान वह बालक, मगर है आज तक जीवित,
धर्म निज छोड़ने को लाल, वह प्रस्तुत न हो पाया।
हक़ीक़त की शहादत में, शहीदों का वसन्तीपन,
हमें भी कुछ मिले शिक्षा, वसन्ती शुभ दिवस आया।

वसन्त पंचमी, सं० २०१०]

चांद जितनी दूर

आज भी तुम दूर उतने, चान्द जितनी दूर।
भागता मैं आ रहा हूँ,
कूदता मैं आ रहा हूँ,
लड़खड़ाता जा रहा हूँ,
पर नहीं हिम्मत है' बाकी, हो गया मैं चूर।
पास होकर दूर तुम हो,
मन के' भीतर पर निठुर हो,
दृष्टि ओझल, हम-सफ़र हो
दीखते हो, पर न आते, क्या कहूँ, हे क्रूर!
तुमको' पाना चाहता हूँ,
तुममें' खोना चाहता हूँ,
मन का' कोना चाहता हूँ,
भाग्य पर साथी नहीं है और मन्ज़िल दूर।
चाँद पाना चाहता हूँ,
प्यार पाना चाहता हूँ,
दुःख से पर भागता हूँ,
सुख ही' पाना चाहता हूँ—है मगर वह दूर।
चाँद जितनी दूर!

कलकत्ता, २१-२-५७]

बग़ावत

ग़मे दिल को सुनाना गर बग़ावत,
कफ़स में छटपटाना गर बग़ावत,
ग़ुलामी को भगाना गर बग़ावत,
है' सोतों को जगाना गर बग़ावत,
तो' मैं बाग़ी बना हरदम रहूँगा।

बग़ावत गर वतन से प्यार करना,
सचाई के लिए गर आप मरना,
मलूकीयत-परस्ती दूर करना,
अमीरों के नशे को चूर करना,
तो' मैं बाग़ी बना हरदम रहूँगा।

किसानों को जगाना गर बग़ावत,
सितमगर को सताना गर बग़ावत,
ग़रीबी को मिटाना गर बग़ावत,
दबाना ज़ुल्म को भी गर बग़ावत,
तो' मैं बाग़ी बना हरदम रहूँगा।

बग़ावत है अगर फ़रियाद करना,
बग़ावत है अगर इन्सान बनना,
बग़ावत गर ख़ुशी से बात करना,
बग़ावत भी अगर यह पेट भरना,
तो' मैं बाग़ी बना हरदम रहूँगा।

अगर हुब्बे - वतन भी है बग़ावत,
अगर फ़र्ज़े-सुख़न भी, है बग़ावत,
शहीदों की इबादत गर बग़ावत,
मदद मुहताज की है गर बग़ावत,
तो' मैं सबसे बड़ा बाग़ी रहूँगा।
लाहौर, १।१।४१]

●

नशा

नशा होता नहीं अच्छा कभी भी,
नशे को छोड़ दो हे हिन्दिओ, अब।
नशा है नाश करता सब गुणों को,
नशे में वास करते पाप हैं सब।
ये' सिग्रेट, भंग, तम्बाकू सभी ही,
बुरी हैं आदतें, अच्छे नहीं ढब।
है' भारत कर दिया ग़ारत नशे ने,
सँभालो होश तुम, जागोगे अब कब ?
था भारत 'भारती' 'सोनेकी चिड़िया',
नशे ने कर दिया बरबाद है अब।
अहद कर नौजवाँ तू आज ही से,
नशे को हिन्द से बरबाद कर अब।
लाहौर, १९४१]

●

शिक्षा

शिक्षा, यह, इक भूषण है, इस मानव का, प्राणी का।
पशु है शिक्षा बिन मानव, है भेद यही वाणी का।

शिक्षा ही है सिखलाती, मानव को मानव बनना,
शिक्षा है ध्येय सभी का, शिक्षा बिन है सब सूना।

धनवान भले हो निर्धन, शिक्षा है आवश्यक धन,
इससे ही सब मिलते हैं, यश, सिद्धि, सफलता औ' धन।

शिक्षा प्रकाश है घर का, अंधियारे जग का दीपक,
शिक्षा में गुण ही गुण हैं, शिक्षा जन-मार्ग-प्रदर्शक।

शिक्षा जीवन-सुन्दरता, शिक्षा जीवन-फुलवारी,
शिक्षा सुगन्धि जीवन की, सारे जग की उपकारी।

शिक्षा निर्धन का धन है, शिक्षा निर्बल का बल है,
बांटे से हरदम बढ़ती, यह जीवन का संबल है।

शिक्षा है विनय सिखाती, यह जग का जीवन-धन है,
कोई भी चोर लुटेरा, लूटे, कब, ऐसा धन है?

शिक्षा ही है सिखलाती, कर्त्तव्य हमारा क्या है,
शिक्षा ही है बतलाती, यह धर्म, कर्म सब क्या है?

शिक्षा ही हमें मिलाती, उस प्यारे जगदीश्वर से,
शिक्षा है हमें मिलाती, अपने अपने वीरों - धीरों से,

विद्वान् बड़ा राजा से, उसका सर्वत्र समादर,
शिक्षा को प्राप्त करें सब, फैलाएँ इसको घर - घर।

सरदारशहर, १९४३]

●

यह जीवन ?

यह जीवन कितना क्षण - भंगुर ?
समय अनिश्चित, गति है अस्थिर,
जीवन कितना, अस्त - व्यस्त है ?
गतिमय है, पर नहीं कहीं थिर।

जन्म - मृत्यु की क्रीड़ा चलती,
आँख - मिचौनी होती रहती।
मानव पर अभिमानी इतना,
नहीं दृष्टि इसकी थिर होती।

आशा के नित महल बनाता,
इच्छा-सरिता में है बहता,
बह - बह कर भी तृप्त न होता;
फिर भी बहना कभी न तजता।

भरी हृदय में आकांक्षाएँ,
नित नवीन चंचल हैं रहती
चंचल करती हैं मानव को,
इसको कभी न शान्त छोड़ती।

मानव-मन तो अति चञ्चल है,
निशिदिन, सांझ-सवेरे हर दम,
चलता ही रहता है अविरल,
शान्त नहीं रहता यह कुछ क्षण।

रात बनी है इसीलिए ही,
मानव भी सुस्ताए कुछ क्षण,
मन को तो यह प्राप्त नहीं है,
चञ्चल ही रहता यह क्षण - क्षण।

अभी - अभी था स्वस्थ मनुज वह,
खुशी - खुशी मुसकाता फिरता,
कुछ क्षण बीते, सुना गया यह,
गया जीव, किस ओर, न देखा ?

आँख वही हैं, कान वही हैं,
भुजा, पैर, सब ही हैं वैसे,
पर शरीर - गति रुद्ध हुई है,
अचल जीव की धारा फिर से।

यही निरन्तर क्रम चलता है,
मृत्यु मर्त्य की आवश्यक है,
नहीं बचा कोई इस क्रम से,
पहले, पीछे का लेखा है।

मानव का मस्तिष्क निराला,
सब कुछ तर्क-कसौटी कसता,
सभी रोग की औषधियाँ हैं,
पर न मरण का भेद निकलता।

मृत्यु भीषिका से जो डरते
वह उनके है साथ खेलती,
बिना बुलाए आ जाती है,
अवसर को भी नहीं देखती।

दिल्ली, १९५५]

कवि से !

कवि, ऐसी कविता करना रे,
जिससे सुख - शाँति मिले जग को, कवि, ऐसी कविता करना रे,
जिससे वीरत्व मिले भव को, कवि, ऐसी कविता करना रे।
तू ऐसी तान सुनादे रे, सब ओर बहे सुख - शाँति - सुधा,
तू ऐसा गान सुनादे रे, सब ओर मिटे दारिद्र्य - क्षुधा।
तू ऐसा मस्त बना दे रे, भूलें सब द्वेष औ' राग वृथा,
तू ऐसी सुधा पिलादे रे, छा जाए सभी में एक नशा।
मानव दानव बन रहा आज, उसको फिर मानव करना रे।
मच रहा आज 'ह' 'हा' क्रन्दन, छल, कूटनीति का नित नर्तन,
सब ओर स्वार्थ का है दर्शन, सब ओर कलह का सम्वर्धन।
निर्धन, धनवान, मजूर सभी के मन में ऐसे भाव जगें,
धुल जाए सभी का द्वेष - वैर, मन में वीरत्व उभार उठें।
ऊपर के सारे भेद मिटें, तू ऐसा साहस भरना रे।
हों सुखी सभी, हो दुख न कहीं, सब ओर भद्र के हों दर्शन,
नास्तिकता-भाव भगें भव से, आस्तिकता का हो सम्वर्धन।
सब ओर प्यार औ' ममता हो, तू ऐसा साहस भरना रे।
ले चल प्रकाश की ओर हमें, घन तम से पार लगादे रे,
सब मिटें जगत से भेद - भाव, ऐसा भ्रातृत्व जगादे रे,
काले - गोरे, औ' उच्च - नीच के भेद मिटें, सब सम करदे रे,
इस जग को आग लगादे रे, नव जग-निर्माण करादे रे,
कल्याण - मार्ग के पथिक, आज, कल्याण मार्ग को चलना रे।

गंगानगर (राजस्थान),
२२-८-५२]

रक्षा-बन्धन

रक्षाबन्धन आया,

बहिन, बाँध दो राखी मुझको, आज दिवस शुभ आया।
राखी के तारों में तीनों लोकों की मर्यादा,
गूढ़ रहस्यों से पूरित राखी का सादा धागा,
तेरी रक्षा करने में, मिट जाए मेरी काया।

इन कच्चे धागों की राखी में ममता का स्पन्दन,
भव-बन्धन से भी कठोर है, यह निजता का बन्धन,
इस अपनेपन ने मुझको, कर्त्तव्य-मार्ग सिखलाया।

बहिन, तुम्हारी राखी का बन्धन है मुझको प्यारा,
जीवन की काली घड़ियों में, है मेरा ध्रुव तारा,
जहाँ रहूँगा, वहीं रहेगी सदा तुम्हारी छाया।

युग - युग से ये धागे, मानव का हैं रूप दिखाते,
आपस में सब भाई - भाई, यह सद्धर्म सिखाते,
राखी का गौरव महान था, अब तो केवल माया।

राखी के ये सूत्र सिखाते मिलना और मिलाना,
प्रेम - भाव से, प्रित - चाह से, स्नेह-सुधा बरसाना,
राखी का सन्देश युगों से यही समय ने गाया।

रक्षाबन्धन आया।

क्वेटा, सितम्बर, ३८]

●

आवाहन

आज दिवस शुभ है वह, जिसकी स्मृति में पागल रहता जग है,
आज लिया था जन्म कृष्ण ने, जिसकी छवि अब तक जगमग है,
अखिल विश्व में होती पूजा, उस ही दिन की स्मृति के कारण,
भारत में आए कान्हा फिर, अतः जगत करता व्रत-धारण।
कान्ह, इधर देखो टुक भर तो अपने भक्तों की हत - गति को,
फैला है कैसा अनियन्त्रण, आओ, देखो हीन कुमति को।
बन्धु - बन्धु में प्रेम नहीं है, पुत्र पिता का है अब घातक,
घर - घर में फैली अशान्ति है, होते हैं अनेक विधि पातक।
हिंसा की ज्वाला से जग यह, आज हुआ है पीड़ित भारी,
भूल चुके हैं हम गीता को, आज बने हैं स्वेच्छाचारी।
आओ श्याम, तनिक दर्शन तो, अपने भक्तों को दो प्यारे!
गौएँ भी वियोग से पीड़ित, उनको धीर बँधाओ प्यारे!
देखो उधर ग्वाल - बालक भी, तो व्याकुल हैं तुम बिन कान्हा!
तनिक सदय होकर दर्शन दो, दुख मेटो उनके सब कान्हा!
भारत - भू पर संकट छाया, उसको आज मिटाओ आकर,
छुआछूत का रोग लगा है, इससे इसे छुड़ाओ आकर।
फिर से आकर हमें सिखा दो, गीता का उपदेश मनोहर,
भक्ति, योग की सच्ची शिक्षा की हमको दो पुनः धरोहर।
वर्णाश्रम की मर्यादा को, फिर से नियमों में चलवा दो,
घर - घर में गो - माता की पूजा करना हमको सिखला दो।

आज तुम्हारे जन्म - दिवस पर, यही निवेदन तुमसे प्यारे !
यही उपासन, कीर्तन, पूजन, यही तुम्हारी अर्चा प्यारे !
यही माँगते भिक्षा तुमसे, आस करो पूरी तुम प्यारे !
इस भारत में एक बार फिर, दर्शन दे दो कृष्ण - मुरारे !*
लाहौर, जन्माष्टमी, ३९]

●

* लाहौर रेडियो स्टेशन से पठित।

माँ का प्यार अगर है बाकी

समरांगण में घबराना मत, आगे बढ़ना; पछताना मत,
शीश हथेली पै रख सैनिक, माँ, तुझको है आज बुलाती।
सत्य युद्ध में जाना होगा, अपना शीश कटाना होगा,
तब ही जयमाला पहनोगे, उधर देख, विजया है आती।
पग पग पर संकट आएँगे, भीमरूप निज दिखलाएँगे,
सत्य-मार्ग से तनिक न हटना, वही तुम्हारा जीवन साथी।
बाल हकीकत को मत भूलो, गुरु गोविन्द-लाल मत भूलो,
सत्य, धर्म है सच्चा साथी, सत्य-भक्ति सब पाप छुड़ाती।
आज बन्धु बलिदान दिवस है, नहीं २' यह विजय-दिवस है,
वीर सैनिकों की बलि ही ने, हमको जयमाला पहना दी।
जागो-जागो सोनेवालों, निद्रा में सब खोनेवालों,
अब भी निज कर्त्तव्य सँभालो, माँ का प्यार अगर है बाकी।
[क्वेटा, १७-८-४०]

●

कृष्ण से !

कृष्ण, आओ कि तुम्हारी है ज़रूरत हमको,
हिन्द में फिरसे झलक अपनी दिखाओ हमको।
अस्मतें लुटती हैं, माताओं की दिन रोशन में,
उनकी रक्षा के लिए, मार्ग दिखाओ हमको।

नौजवानों में नहीं, हिम्मते - मर्दा कुछ भी,
फिरसे अर्जुन की तरह पाठ पढ़ाओ हमको।
गौएँ कटती हैं यहाँ, कोई नहीं है रक्षक,
इनकी रक्षा के लिए दरस दिखाओ हमको।

वेष अपना है नहीं, भाषा नहीं है अपनी,
फिर से इक बार सही मार्ग दिखाओ हमको।
छाए बादल हैं मुसीबत के हमारे ऊपर,
फिर से घनश्याम, तुम्हीं आके हटाओ इनको।

हिन्द में आज है मजबूरी औ' मज़लूमी बपा,
कान्ह, खुशहाली का अमृत तो पिलाओ हमको।
लेके हाथों में सुदर्शन को पधारो कान्हा,
पाप बढ़ता ही गया, इससे हटाओ हमको।

'भारती' हिन्द को फिर तेरी ज़रूरत है अब,
रास्ता भूल चुके, फिरसे दिखाओ हमको।

षवे I, जन्माष्टमी, १९४१]

●

शिवरात्रि

आज शिव की रात है, आज मंगल रात है,
पूजा घर - घर हो रही, शिव की, पूजा हो रही,
भक्तगण की भीड़ है, मन्दिरों में भीड़ है,
व्रत औ' पूजा हो रही, थालियाँ हैं बज रहीं,
बज रहे घड़ियाल हैं, बज रहे खड़ताल हैं।

कीर्तन है चल रहा, औ' भजन है चल रहा,
भीड़ बढ़ती जा रही, रात भी है छा रही,
बच्चे, बूढ़े औ' जवाँ, नर भी हैं, औ' नारियाँ,
शिव की पूजा चल रही, रामधुन है चल रही,
खूब ध्वनि है, हो रही, शिव की पूजा हो रही।

भक्तगण सब मस्त हैं, कीर्तन में व्यस्त हैं,
मूर्ति-वन्दन हो रहा, शिव - स्तवन है चल रहा,
'मूल शंकर' मग्न है, अपनी धुन में मग्न है,
उसकी है सच्ची खुशी, भूख है उसको लगी,
वह अभी नादान है, वह अभी अनजान है।

पितृ - आज्ञा मान ली, शिव की', पूजा ठान ली,
व्रत भी, है उसने किया, पाठ ग्रन्थों का किया,
स्तुत्य है उसकी लगन, अपने प्रण पर है मगन,
मन में उसके हर्ष है, शिवजी' का उत्कर्ष है।
भीड़ हटती जा रही, रात बढ़ती जा रही।

भक्त घर को जा रहे, कीर्तन से उठ रहे,
नींद उनको आ रही, भूख भी है लग रही,
कुछ बड़े बूढ़े अभी, जागते, सोते कभी,
शिव की, पूजा चल रही, रात भी है ढल रही।
इक तमाशा है हुआ, 'मूल' है जागा हुआ।

नींद से वह लड़ रहा, आँख पर जल मल रहा,
एक चूहा आ गया, मूर्ति' पर है वह चढ़ा,
सब तरफ़ है दौड़ता, पुण्य प्रतिमा पर बढ़ा,
मूल अब हैरान है, मन में इक तूफ़ान है,
क्या यही शिव हैं बली ? है न चूहा भी वशी ?

ये 'मुझे दे सकते' क्या ? जब न ख़ुद बचते ज़रा ?
सब हैं, सोते दीखते, नींद में डूबे पड़े,
'मूल' अब हैरान है, मन में इक कुहराम है,
सोचता मन में मगर, देखता है सब तरफ़—
कौन है जागा हुआ, कोई मुझको दे बता ?

है यह आख़िर बात क्या ? चढ़ गया चूहा, यह क्या ?
शिव नहीं है रोकते, क्यों न आँखें खोलते ?
हो गया मजबूर जब, थे जगाए जनक तब,
हड़बड़ा कर जग उठे, आँख वे मलने लगे,
और पूछा 'मूल' से—"क्या हुआ तुझको, अरे ?"

'मूल' ने सब कुछ कहा, आँख से देखा जो' था,
अपनी सब उलझन कही, अपनी सब हलचल कही,
पुत्र पर कुछ क्रुद्ध हो, नींद से बेचैन हो,
घूरकर सहमे हुए, आँख मल कहने लगे—
"पुत्र, तू नादान है, करता क्या अपमान है ?

शिव को पत्थर बोलता, जीभ तेरी हो जुदा।
कुल-कलंकी तू महा, पूछता सब यह यहाँ ?
क्रुद्ध हो जाएँ न शिव, कह न कुछ मुखसे अशिव।"
मूल के मन में तड़प, शीघ्र ही वह आया' घर,
भूख से व्याकुल था' वह, प्याससे व्याकुल था' वह—

माँ ने, उसको प्यार से, खाने' को कुछ फल दिए,
मन मगर बेचैन था, शिव से मिलना ध्येय था
थी लगी उसको फ़िकर, "शिव को ढूँढू मैं किधर ?
सब तरफ भटका फिरा, कष्ट था कितना सहा ?
खोजता फिरता हुआ, जाके मथुरा में रुका।

है लगा उसको पता, दंडी स्वामी थे जहाँ,
जाके चरणों पर गिरा, और वह कहने लगा—
"जानना कुछ चाहता, प्राप्त करना चाहता,
शिव को पाना चाहता, दण्डी' स्वामी हो कृपा।"
सोचकर बोले ऋषि—"भूल जाओ इस घड़ी

प्राप्त जो कुछ है किया, ज्ञान जो कुछ है मिला।
थी कड़ी काफ़ी सजा, 'मूल' फिर भी था अड़ा,
मान ली आज्ञा सभी, ठान ली गुरु की कही,
फल भी पाया 'मूल' ने, कष्ट झेले 'मूल' ने,
शूल समझे फूल सम, कष्ट माने तूल सम,

ताड़नाएँ सब सहीं, यातनाएँ सब सहीं।
हो गई शिक्षा खतम, कर लिए पूरे नियम,
भेंट में कुछ लौंग ले, 'मूल' समुपस्थित हुए,
दण्डी ने माँगा मगर, दान - जीवन का सफ़र,
"है अँधेरा सब तरफ़, दूर हों सब छल - कपट,

खण्ड कर पाखण्ड सब, शान्त हो ब्रह्माण्ड तब।"
आज्ञा' गुरु की पूर्ण की, कामनाएँ पूर्ण कीं,
थे बने स्वामी तभी, श्री दयानन्द सरस्वती,
फल यह, शिव की रात का, बोध था इस दिन हुआ
हर बरस आता दिवस, सब मनाते नारि - नर।
दिल्ली, शिवरात्रि, सं० २०१०]

राखी का दिन आज........

राखी दिन आज, बहिन पहना, मुझको ये सूती धागे।
भैया द्वार खड़ा मुसकाता, उसमें तू कर्तव्य जगा दे।

बहिन बावली, तेरा भैया, कांटों की शैय्या पर सोता,
निशिदिन, सांझ दुपहरी, जीवन की काली रजनी में खोता,

तू रोती है, अरी बावली, छिः जीवन तो समझौता है,
दुःख - सुख की छाई बदली में अम्बर भी काला रोता है।

विश्व दुःखी, आधीन देश यह, फिर कैसा आराम बावली,
तेरा भैया इस जगती में, लेता कब सुख-सांस अरी री ?

तू कहती है, निज को सुखमय करके जगती को भूलूँ मैं,
तू तो पगली, दुःखी जगत के इस दुःख को कैसे भूलूँ मैं ?

चिन्ता क्या, सब सहना होगा, सहना ही तो जग का संबल,
दुःखों से घबराना कैसा ? दुःखों से तरने में ही बल।

कितने भाई बन्द सीकचों में, चुपचाप पड़े सड़ते हैं,
कितने भाई आज विवश, चुपचाप, पड़े जीवन खोते हैं।

उनकी भी तो बहनें राखी लिए खड़ी द्वारों पर अपने,
भेज न पाती बिखरे मानों उनके वे सोने के सपने।

आज सुखी मैं कितना बहना, तेरा स्नेह मुझे दुलराता,
जीवन की सूनी घड़ियों में, यही बँधाएगा सब नाता।

क्वेटा, रक्षा-बन्धन, १९४४]

●

रक्षाबन्धन आज....

रक्षाबन्धन आज, बहिन ने रक्षा भेजी है मुझको,
ममता-बन्धन आज, बहिन ने ममता भेजी है मुझको।
राखी का दिन आज, बहिन ने राखी भेजी है मुझको,
स्नेह-मिलन दिन आज, बहिन ने साक्षी भेजी है मुझको।

बरसों बीते, इसी दिवस, बहिना राखी पहनाती थी,
हँस हँस, खिल-खिल, प्यारी बहना, प्रेम-सुधा बरसाती थी,
किन्तु अचानक एक दिवस, भाई बहिना से दूर हुआ,
'भारत छोड़ो' आन्दोलन में सभी ओर मशहूर हुआ।

अभिमानी शासन को टक्कर लेने पर मजबूर किया,
डोल उठा शासन, उसने बहिना से भाई दूर किया,
दिन बीता, रजनी बीती, सप्ताह, मास, वर्षों बीते,
एक नहीं, दो नहीं, तीन भी नहीं, चार पूरे बीते।

वर्ष, नहीं, युग बीते, पर वह निष्ठुर ही बन गया अरे,
करती रही प्रतीक्षा बहिना, करते टप-टप नेत्र बहे।
अकस्मात् शासन डोला, धीरे - धीरे नेता छूटे,
बहिना का भाई भी छूटा, कैसे भाई से रूठे?

चार युगों से उत्सुक बहिना, खड़ी रही, पर बढ़ी नहीं,
भैया ही आए समीप, बोले—'क्यों आगे बढ़ी नहीं'?
भैया के भुज बढ़े मिलन को, रूठी रह न सकी बहिना,
'भैया आओ'—स्वागत कहते गले मिली प्यारी बहिना।

भैया के नीरस जीवन में फिर से आज वसन्त खिला,
भैया के निष्ठुर जीवन में फिर से स्नेहामृत बरसा,
भैया के सूखे उपवन-मन में फिर से कोयल आई,
भैया की धुँधली आँखों में, फिर से ज्योति नई आई।
आज सुखी है भैया, उसने राखी को स्वीकार किया,
'युग-युग बहिन जिए, फूले'—वरदान रूप उपहार दिया,
नित आए राखी का दिन, बहिना प्यारी राखी बाँधे,
इस कृत्रिम जीवन को फिर से निजता ममता-मय कर दे।
[पहलगाम—(श्री अमरनाथ यात्रा) रक्षाबन्धन, २००३]

यह आज हुआ क्या है ?

इस आज के मानव को, बतलाओ हुआ क्या है ?
यह आज हुआ क्या है, यह आज हुआ क्या है ?

सब ओर मचा क्रन्दन, सब ओर रुदन, हिंसा,
मानव है बना दानव, मानव को हुआ क्या है ?
शाँति तो सभी कहते, पर युद्ध की तैयारी,
'अणुबम' की ही चर्चा है, लोगों को हुआ क्या है ?

यह 'संघ'[1] बना कैसा, जब फूट है आपस में,
सबको हैं पड़ी अपनी, परवाह किसे क्या है ?
लाखों हैं कटे मानव, तब भी न मिली शिक्षा,
रक्षक ही बने भक्षक, भक्षक से गिला क्या है ?
यह आज हुआ क्या है ?

---

१. संयुक्त राष्ट्र-संघ।

बंगाल की कहानी

वंगाल की कहानी, वंगाल की ज़वानी।
भीषण अकाल आया, बेहाल है बनाया।
पस्ती ही छा रही है, आफ़त ही ढा रही है।
पीड़ा भी रो रही है, ग़म, दुख को ढो रही है।
सरकार तब भी चुप है, चलती वही कहानी ॥
आटा कहीं न मिलता, चावल कहीं न मिलता।
मिलती कहीं न रोटी, सूखी है बोटी बोटी।
'हा' 'हा' मची हुई है, बस खलबली हुई है।
ऐसी बुरी अवस्था, आफ़त है जिन्दगानी ॥
अखबार कह रहे हैं, लाखों मनुज सिधारे।
रोती है बाल विधवा, धीरज को कौन धारे?
चिल्ला रहे हैं बालक, तो भी वही है बक-झक।
कैसा अँधेर छाया, वह नीति है पुरानी ॥
चेतावनी थी, सबकी, सरकार तो भी चुप थी,
चावल विदेश जाता तो भी न रोकती थी।
भारत के लाल लाखों, भूखे ही छटपटाए,
तो भी दया न आई, तरकीब कुछ न ठानी ॥
चावल, अनाज फ़ौजी, कितना भरा पड़ा था?
कुछ भी दया न आई, कण भी नहीं दिया था।
कन्याएँ बेची जातीं, उनका सतीत्व लुटता,
सड़कों पै' लाशें सड़तीं, दुर्भाग्य की निशानी ॥

हे देशवासियो, तुम, कुछ तो विचार कर लो,
बंगाल भूख - पीड़ित, कुछ ऐश कम ही कर लो।
भीषण अकाल में तो, सब जातियाँ बराबर,
हिन्दू नहीं बचा है, मुस्लिम की कुछ न मानी ॥

अब भी विचार कर लो, भारत तुम्हारा घर है,
दुख उसका दुख तुम्हारा, सुखमें भी क्या फ़िकर है?
'मज़हब नहीं सिखाता, आपस में वैर करना,'
भारत है घर हमारा, हमने यही है ठानी
बंगाल की कहानी—बंगाल की ज़बानी ॥

[चूरू, राजस्थान-प्रवास, फ़रवरी १९४४]

●

भारत मेरा आबाद रहे

यह भारत मेरा शाद रहे।
सब देशों में आगे रहता, यह कभी नहीं पीछे रहता,
है शांति-दूत, यह क्रान्ति-दूत, सारे जग को उन्नत करता,
यह देश सदा ही शाद रहे।

गंगा - यमुना दोनों नदियाँ, भारत को हैं उर्वर करतीं
वह उच्च हिमालय की चोटी, इसका मस्तक उन्नत करतीं,
यह कभी नहीं नाशाद रहे,
यह सदा सुखी औ' शाद रहे।
जन-तंत्र हमारा सुखी बने, सम्पन्न बने, सम्पूर्ण बने,
घर - घर वर्षा आनन्द झरे, दुख, कष्ट मिटें, आशा पनपे,
सब ओर ख़ुशी आह्लाद रहे,
भारत मेरा आबाद रहे।

दिल्ली, १९५५]

हुंकार

आज अचानक कैसा गर्जन? है रणभेरी आज बजी क्यों?
सुप्त-सिंह की निद्रा टूटी, रौरव-ज्वाला आज जगी क्यों?
चारों ओर घटा काली भीषण बन आज डराती है क्यों?
भीम-भयङ्कर आँधी कैसी? प्राणों को कलपाती है क्यों?

महाकाल की झञ्झा कैसी, आज नभस्थल में है छाई?
'त्राहि-त्राहि' की है पुकार यह देखो क्यों सुनने में आई?
केसरिया बाना पहने यह चला जा रहा कैसा दल है?
'बढ़ते चलो', 'बढ़ो आगे' का कैसा भीषण कोलाहल है?

मानव, तेरी इच्छाओं का पार नहीं हैं, अन्त नहीं है,
किन्तु, निजेच्छा पर जग को भी आज नचाना सुकर नहीं है।
अनाचार, स्वेच्छा के बल पर कब किसने है धाक जमाई?
मानवता को कुचल-कुचल कर कब किसने है विजय कमाई?

मानव को मानव का वैरी आज भले कर ले यह छल-बल,
किन्तु, सदा से प्रेम दया पर ही है स्थित मानव का सँबल।
कितने आए, चले गए, पर आज उसी की ही है पूजा,
जिसने मानवता की पूजा करके निज इच्छा को पूजा।

क्यों फिर आज कहो किस बल पर, मानवता से है रण ठाना?
जिनके कारण आज बने हो, क्यों अब उनका ही क्षय ठाना?
अब भी सोच समझ कर अपने पैरों को रख सत्ताधारी!
उधर देख, उस पार क्षितिज के मुस्काता है लीलाधारी!

[हैदराबाद-सत्याग्रह, लाहौर, दिसम्बर, १९३८]

●

पन्द्रह अगस्त

पन्द्रह अगस्त, पन्द्रह अगस्त, भारत माता का मुक्ति दिवस।

वर्षों का तप फल लाया है, जन-जन में हर्ष समाया है,
भारत है बन्धन-मुक्त हुआ, माता का शुभ दिन आया है,
हो सुख-वर्षा का वरद हस्त, पन्द्रह अगस्त, पन्द्रह अगस्त।

भारत है अब स्वाधीन हुआ, भारत को है स्वातन्त्र्य मिला,
भारत का अणु अणु विकस उठा, भारत का कलुषित कष्ट मिटा,
माता है बन्धन-मुक्त हुई, कण-कण में छाया सुखद हर्ष।

बालक, जवान औ' नर-नारी, स्वाधीन देश के सब बासी,
हैं उत्सव आज मनाते सब, मस्तक ऊँचा कर कहते सब,
है दृश्य देखता जग अद्भुत, भारत ललाट है नित उन्नत।

हैं जाग उठे भारत वाले, हैं जाग उठे सब जग वाले,
जागा पूरब, जागा पश्चिम, अब जाग उठे बन्धन वाले,
स्वाधीन हुआ है सारा जग, आधीन न कोई आज मनुज॥

पन्द्रह अगस्त, पन्द्रह अगस्त, भारत माता का मुक्ति दिवस।

●

है वही रात........

है यह वह रात, कि जब मूल दयानन्द हुए,
है वही रात कि जब सच्चे शिवानन्द हुए।
आज की रात ने स्वामी को बदल डाला था,
उनको निज घर से छुड़ा, जग का बना डाला था

देखा स्वामी ने कि अज्ञान है छाया घर - घर,
ईश को भूल के पत्थर था पुजाया दर - दर।
देखा पढ़ने का न अधिकार था माता को यहाँ,
औ' अछूतों को नहीं मिलने का अधिकार यहाँ।

बाल विधवाओं की हालत को भी उसने देखा,
धर्म निज छोड़के' परधर्म में जाते देखा।
यह भी देखा कि है पाखंड जगत में कितना ?
यह भी देखा कि है अन्याय जगत में इतना ?

शिव की पूजा में सुना एक अनोखा जादू,
एक चूहे ने उसे झट से किया था काबू।
देखकर 'मूल' यह घबराया, हुई धुन यह सवार,
'सच्चे शिवजी को मैं ढूढूँगा', किया मन में विचार।

रात - दिन एक किया, कष्ट भी झेले कितने ?
टस से मस वह न हुआ, व्रत पै रहा दृढ़ अपने,
हाथ ले 'खण्डिनी', पाखण्ड भगाए उसने,
वेद अमृत को पिला, ज्ञान सिखाया उसने।

क्वेटा, शिवरात्रि, १९४२]

२६ जनवरी

आज दिवस गणतन्त्र स्थापना का फिर से है आया,
शत वर्षों से पराधीन भारत को मुक्त कराया।
मुक्ति मिली, आनन्द हुआ, भारत स्वाधीन हुआ फिर,
देश हुआ खण्डित, लाखों आए भारत नारी-नर।

देश-विभाजन हुआ, अनेकों संकट हम पर आए,
बापू हुए शहीद, छोड़कर हमें स्वर्ग को धाए।
वीर जवाहर नर-नाहर ने हिम्मत नहीं गँवाई,
साथी थे सरदार, जिन्होंने अति दृढ़ता' थी पाई।

काश्मीर पर हुआ अचानक, हमला बड़ा भयानक,
भारत के सैनिक थे पहुंचे, रातों - रात यकायक।
काश्मीर की रक्षा करके, निज कर्त्तव्य चुकाया,
शत्रु लुटेरे भगा दिए औ' धीरज नहीं गँवाया।

पाकिस्तानी चालों से हम डरे नहीं घबराए,
हुए निराश लुटेरे, हमने दुश्मन सभी भगाए।
छोटे - छोटे राज्य मिलाए, राजा भी समझाए,
अकड़ा था रिज़वी ज़ोरों से, उसके होश गँवाए।

भारतीय फ़ौजों ने अपना झण्डा फिर लहराया,
काश्मीर रक्षा-प्रबन्ध सब ठीक प्रकार निभाया।
भारत की परराष्ट्र-नीति की चर्चा है घर-घर में,
सभी देश आदर करते हैं, वसुधा अतल-वितल में।

हमें बनाना है भारत को, फिर से देश महान,
अमर रहे यह देश हमारा, हम सब हों बलवान।
ऊँच - नीच का भेद भुलाकर, हो जाएँ हम एक,
हिन्दू - मुस्लिम - सिख - ईसाई-सब हो जाएँ एक।
जो कोई भी टक्कर ले, कर दें हम चकनाचूर,
भारत माँ की रक्षा - हित हम सब जुट जाएँ शूर।
भारतीय हम याद करें हम पुरखों की वह शान,
आँख उठाकर देखे कोई किसकी ऐसी आन?
हम न किसी के दुश्मन, सबको गले लगाना आज,
आओ सब मिल ख़ुशी मनाएँ, आज़ादी - दिन आज।
जाग उठा है भारत फिर से, अलख जगाना आज,
'कोई दबा न सकता हमको,' नाद सुनाना आज।

दिल्ली, २६ जनवरी १९५३]

यह मेरा भारत हो महान्

हो सुख-निधान, हो बल-निधान, हो गुण-निधान, हो चरितवान्।
यह मेरा भारत हो महान्।
घर - घर सुख की वर्षा होवे, बेकारी, निर्धनता रोवे,
हों धैर्यवान्, हों वीर्यवान, यह देश बने मेरा महान्।
अर्जुन सम योद्धा बनें आज, हों भीम भयंकर करें गाज,
मर्यादा में हों राम-सदृश, योगी होवें श्री कृष्ण-सदृश,
अभिमन्यु-सदृश हों चरितवान्, यह मेरा भारत हो महान्।

राणा प्रताप से बलधारी, बन्दा सम होवें व्रतधारी,
होवें अशोक सम धैर्यवान्, गान्धी जैसे हों अति महान्,
हों वीर जवाहर से महान्, यह देश बने मेरा महान्।
अनुसूया, सीता, सावित्री, दमयंती सी हों चरितवती,
रानी लक्ष्मी सी हों नारी, झाँसी वाली सी भाग्यवती,
सारे प्रदेश में आन - मान, यह देश बने मेरा महान्।

दिल्ली, १९५५]

●

वरदान

ईश हमें दो यह वरदान, हम हैं बालक अति नादान।
देश-प्रेम के व्रती बनें, मातृ - भूमि के पथी बनें,
गुरुओं का सम्मान करें, मात - पिता-आज्ञा मानें,
विद्या ग्रहण करें मिलकर, विनयी हों, हम हों विद्वान्।
बापू के अनुयायी हों, वीर जवाहर से हम हों,
नेताजी सुभाष से हों, वीर हक़ीक़त से हम हों,
मातृ - भूमि के सेवक हों, न्योछावर हों तन, मन, प्राण।
वीर बनें, व्रतधीर बनें, सहनशील, गम्भीर बनें,
बनें विवेकी, धीर बनें, संयम - बल - बलबीर बनें,
जाति - राष्ट्र से प्यार करें, करें तिरंगे का सम्मान॥
हम हैं बालक अति नादान।

दिल्ली, अगस्त, १९५५]

●

महात्मा बुद्ध !

हे बुद्ध, शुद्ध, हे तपःपूत, तव चरणों में मेरा प्रणाम,
शत-शत प्रणाम, मेरा प्रणाम, सारी जगती का हो प्रणाम।
करुणावतार, तुमने जग को, बतलाया मार्ग अहिंसा का,
जग भूल चुका था मानवता, अपनाई इसने दानवता।
तुमने बतलाया जगती को—'संसार दुःख का सागर है',
तुमने समझाया मानव को—'काया ममता-माया-घर हैं।'
मिट्टीके इस पुतले पर जग, कितना अभिमान किया करता ?
नश्वर शरीर, फिर क्यों इस पर, मानव है शान किया करता ?
यह रोग, जरा औ' मृत्यु सभी, मानव शरीर को हैं घेरे,
मानव की सत्ता कितनी है ? दो गज़ की वसुधा यह घेरे।
आकांक्षाएँ, अभिलाषाएँ, इसकी महान, हैं अति महान,
कल्पना-लोक में उड़-उड़ कर, करता रहता इत-उत प्रयाण।
छल, बल, असत्य का संबल ले, मानव है इतराता फिरता,
जग को यह धोखा है देता, पर निज से स्वयं छला जाता।
'निर्वाण', 'मुक्ति'—बस एक यही, है लक्ष्य मनुजता का प्यारे,
इसको पाने की इच्छा ले, घर छोड़ फिरे वन में मारे।
घर छोड़ा, घर भी था कैसा ! सुख-साज वहाँ कैसे-कैसे !
प्राणों से भी प्रियतम पत्नी, उसको छोड़ा सोते, चुपके।
राहुल की भी परवाह' न की, छोड़ी सब ममता-चाह सभी,
यौवन कहलाता मदमाता, पर नई एक मस्ती उत थी।

निर्वाण-प्राप्ति का लक्ष्य एक, ये तो पथ की बाधाएँ हैं,
सबको वह छोड़ चला वन को, वनमें कितनी विपदाएँ हैं ?
कष्टों पर आए कष्ट कई, पर मूक भाव से सहा उन्हें,
शूलों को फूल समझ उसने, था गले लगाया सदा उन्हें।

तप किया, विघ्न भी आए, पर, वह डिगा नहीं, बस टिका रहा,
अपने पथ पर अविरत चलते, असि-धारा-व्रत पर अड़ा रहा।
निर्वाण मिला—था ज्ञान मिला, जिसकी उलझन में था भटका,
पर अब भी थी कुछ धुन सवार, चल पड़ा मार्ग, वह नहीं रुका।

संपीड़ित मानवता को फिर, उसने था सच्चा ज्ञान दिया,
संत्रस्त मनुज को फिर उसने, आश्रय देकर आह्वान किया।
हो गया ज्ञान, थे बने बुद्ध, शिष्यों को भी था दिया ज्ञान,
था धर्म चलाया बौद्ध, अहिंसा-था जिसका व्रतचिर महान्।

निर्धन, धन वाले, सब उसमें, मिल गए, संघ-विस्तार हुआ,
नारी-नर एक पताका के नीचे आए, उद्धार हुआ।
राज्याश्रय पाकर बढ़ा धर्म, फैला तब देश-विदेशों में,
लंका, ब्रह्मा, जापान, चीन, भारत की प्रजा, नरेशों में।

राहुल औ' राहुल - जननी भी, सम्मिलित हुए इस शासन में,
सम्राट् चक्रवर्ती अशोक, भी बने सहायक शासन में।
है आज जयन्ती उसी महामानव की विश्व मनाता फिर,
हिंसा-ज्वाला से ग्रस्त आज, संसार चाहता शांति अमर।

हैं बुद्ध अमर, संदेश अमर—उनका अणु-अणु में व्याप रहा,
गा रहे नारि-नर विजय-गान, हिंसा का शासन काँप रहा।
जय मानव की, मानवता की, जय सत्य अहिंसा-धारा-व्रत,
जय धर्म भक्ति औ' निष्ठा की. जय सदाचार की चिर-शाश्वत।

[दिल्ली-बुद्ध-जयन्ती, सम्वत २०१३]

बापू महान् !

बापू महान्, तुम चिर महान्,
सारे जग में तुम अति महान्।

रोता अग - जग, भू-गगन-लोक, जड़ चेतन हैं सब विकल, शोक,
मेरा अन्तर भी शोक - ओक, है विश्व व्यथित हो रहा आज,
सबका तुम में है लगा ध्यान, बापू महान्, तुम चिर महान्।

सूझा यह क्या हत्यारे को ? भक्षक समझा रखवारे को !
अरि समझा अपने प्यारे को, जनता के राज - दुलारे को,
बापू फिर भी कर क्षमा-दान, हो गए अमर औ' चिर महान्।

हरिजन का प्यारा आज कहाँ ? खादी का प्यारा आज कहाँ ?
वैष्णव-जन-प्यारा आज कहाँ ? जन- जन का प्यारा आज कहाँ ?
हिन्दू, मुस्लिम, सिख शोक-ग्रस्त, व्याकुल है अब सारा जहान।

सागर से थे गम्भीर, धीर, शिशु से निष्कपट, सरल, सुवीर,
अद्भुत तव लीला है अपार, पा सका न कोई आर - पार,
तुम देव नहीं, अति मानव थे, सारे जग को था दिया ज्ञान।

तुम में थी बुद्ध-धर्म की ध्वनि, तुम में थी जिन-संस्कृति की ध्वनि,
तुममें हिन्दुत्व-प्रतिष्ठा थी, इस्लाम धर्म की थी प्रतिध्वनि।
सब धर्मों के प्रतिनिधि महान्, बापू महान्, तुम चिर महान्।

तुम राम कृष्ण के संपोषक, तुम बुद्ध महाजिन-अनुमोदक,
शंकर, कबीर, नानक, ईसा-के मार्ग चले, थे उद्धारक,
है अमर कीर्ति जग में महान्, बापू महान्, तुम अति महान्।

अबला-दलितों के अभिभावक, खादी, चर्खे के उन्नायक,
हिन्दुस्तानी के संरक्षक, हिन्दू - मुस्लिम - सबके रक्षक,
पश्चिम को भी था दिया मान, बापू महान्, तुम अति महान्।

हिंसा को तुमने ललकारा, अन्याय, पाप को फटकारा,
जीवन भर धैर्य नहीं हारा, जीवन संघर्ष बना सारा,
मर कर भी अमर, अमिट महान्, गांधी महान्, तुम अति महान्।

तुम चले गए, बलिदान हुए, तुम मानवता-हित अमर हुए,
प्राणों की आहुति देकर भी, तुम अमर बने, तुम महत् बने,
तुमने प्राणों का दिया दान, बापू महान्, तुम अति महान्।

मोहन, तुम सचमुच 'मोहन' थे, 'राधा' बेचारी रोती है,
गोकुल सूना सा लगता है, मथुरा भी सूनी लगती है,
मोहन, तुम निष्ठुर हो महान्, तुमने मानव का किया मान।

मानव दानव बन गया आज, उसको अब कुछ भी लाज नहीं,
क्या मिला आज हत्यारे को ? कुछ भी तो उसको प्राप्त नहीं,
"हे राम" कहा, दे दिए प्राण, हत्यारे के प्रति क्षमावान्।
बापू महान्, तुम अति महान्॥

दिल्ली, बापू-निधन तिथि, (३०।१।१९४८)]

●

कमाल !

बापूजी, आपने था किया जग में वह कमाल,
संसार सारा झूम उठा, कर सका न टाल।

अंग्रेज़ छा चुके थे, हमारे वतन पै खूब,
भाषा मिटी, पौशाक मिटी, औ' मिटे, हक़ूक।
तूने हमें बताया अहिंसा का सारा हाल॥

सच्चाई के, अमन के' थे आदर्श देवता,
अंग्रेज तेरे जादू के हर दाव देखता,
'छोड़ो हमारा देश' था' नारा तेरा' कमाल।

थे सादगी के देवता, सत्याग्रही महान्,
था प्रेम हर किसी से, वह हिन्दू हो मुसलमान,
आज़ाद देश आज तेरी मौत से मलाल॥

खादी - प्रचार करके किया देश का भला,
हरिजन गले लगाए, दिया उनको फिर मिला,
चर्ख़ा चला के देश को, कर डाला' है निहाल॥

बापू थे आप सबके, औ' नेता थे देश के,
औ' थे महात्मा, प्रिय 'मोहन' स्वदेश के,
संसार सारा डोल उठा, कर सका न टाल॥

दुश्मन को जीतना यह बड़ा काम है कठिन,
बलशाली शत्रु हो अगर तब तो महा कठिन,
अंग्रेज जाति जीत ली, सचमुच था यह कमाल॥

तूने सिखाया सबको गले मिलना प्रेम से,
सच्चाई औ' अहिंसा, सिखाई थी प्रेम से,
अँग्रेज़ जीते प्रेम से, भारत के प्यारे लाल !

राजेन्द्र औ' पटेल, जवाहर तेरे अज़ीज़,
तूने दिया था मंत्र, अहिंसा बड़ी है चीज़,
उनको ही' नहीं, विश्व को तेरा बड़ा मलाल ॥

●

टैगोर

यह नहीं पूछो कि टैगौर की क्या हस्ती थी ?
उनकी नज़रों में यह दुनियाए-अलम बसती थी।
उनकी आँखों में जहाँ आज बना है दोज़ख़,
उनके सब नग्मों में भगवान की ही हस्ती थी।
थे, वह शायर कि जहाँ नाज़ था करता उन पर,
उनके हर लफ्ज़ में शायर की ही अलमस्ती थी।
उनके नग्मों में है पुरदर्द फ़साना दिल का,
उस फ़साने में भरी हिन्द की कुल पस्ती थी
थे' वह भारत के गुरुदेव, जहाँ के हमदर्द,
उनके हर गीत में इन्सान की रूह हँसती थी।
उनके गीतों में' भरा, ज्ञान का सन्देश नया,
इक निराली ही अदा, उनमें सदा बसती थी।
यह है सच, आज नहीं हैं वे' जहाँ-फ़ानी में,
उनका हर शब्द अमर, उनकी अमर हस्ती थी।
'भारती' उनका बदल आज कहाँ भारत में ?
उनकी तो शान निराली थी', अजब मस्ती थी।

क्वेटा, रविबाबू के निधन पर, ८।७।१९४१]

●

सरदार हमारा चला गया

मानवता है संत्रस्त आज, दानवता बढ़ती है जाती,
सुख-शांति हुए सब सपने हैं, रणचंडी भय है दिखलाती,
संसार जगी भीषण ज्वाला, सब ओर निराशा है छाई।
मानव है मानव का वैरी, विश्वास न देता दिखलाई,
नौका डगमग-डगमग डोले, नाविक प्यारा है चला गया।

भारत स्वतन्त्र है आज किन्तु, सब ओर उदासी है छाई,
रिश्वत, मंहगी का हुआ ज़ोर, दुष्काल है' देता दिखलाई,
संकट ही संकट हैं छाए, सीमा पर भी संकट छाया,
तूफ़ान दिखाई देता है, बादल सब ओर घुमड़ आया,
मानवता आज पुकार रही, 'मानव का प्यारा चला गया।'

भारत स्वतन्त्र है आज, किन्तु, उलझन पर उलझन नित आतीं,
सब ओर समस्याएँ आकर, हम सबको व्याकुल कर जातीं,
बरबाद हुए निष्कासित भी, अबतक दर-दर ठोकर खाते,
अति-वृष्टि कहीं, दुष्काल कहीं, संकट पर संकट हैं आते।
कश्मीर अभी है घिरा हुआ, सरताज हमारा चला गया।

सरदार नहीं हैं आज, किन्तु, हम उनके पथ पर चले चलें,
चेतें हम अब भी संकट में, हम पाँच, नहीं, सौ-पाँच बनें,
संगठित रहें हम आज, शत्रु अवसर की चिन्ता में आतुर
कर्त्तव्य - परायण बनें, देश की रक्षा में होवें तत्पर,
भारत अनाथ है आज हुआ, सरदार हमारा चला गया,

दिल्ली, सरदार-निधन-तिथि]

भूदान-यज्ञ के सूत्रधार !

भूदान–यज्ञ के सूत्रधार, तुमको प्रणाम, ऋषिवर प्रणाम।

तुम हो नायक, तुम कर्णधार, धरती माता के रक्षपाल,
तुम मूक तपस्वी, राग-हीन, हो क्रोध-हीन, ईर्ष्या-विहीन,
हो द्वेष-हीन, अभिमान-हीन, हो छल-विहीन, हो दर्प-हीन,
आचार्य-प्रवर, हे सन्त–श्रेष्ठ, तुमको प्रणाम, ऋषिवर प्रणाम।
हो दीनों की करुणा पुकार, हो मूक - जनों के अश्रुधार,
अबलाओं की तुम हो गुहार, तुम हो अनाथ के कण्ठ-हार,
हो मानवता की तुम पुकार, कलियुग के हे धर्मावतार,
हे वैरागी, हे कर्म-वीर, हे योगिराज, तुमको प्रणाम।
हे दीनबन्धु, नेता-धुरीण, बापू के सत्याग्रहि - प्रवीण,
मर्यादा - पुरुषोत्तम नवीन, हे तपः पूत, हे दम्भ-हीन,
हे दयावीर, हे धर्मवीर, हे त्याग-वीर, ऋषिवर प्रणाम।
हे शान्ति - दया - धर्मावतार, हे सत्य - अहिंसा - नीतिकार,
हे शील–व्रती, मानव उदार, हे यती, तपी, उन्नत विचार,
बापू के प्रतिनिधि, पुरुष-श्रेष्ठ, मानव-रचना की मूर्ति श्रेष्ठ,
हे मानव-दल के अग्रगण्य, तुमको प्रणाम, मुनिवर प्रणाम॥

मसूरी, जून, १९५३]

बंगाल-केसरि !

बंगाल - केसरी चला गया,
जन-जन का प्यारा चला गया।
वह नीति-धनी, था मान-धनी, निर्धन का सेवक, न्याय-धनी,
दलितों विधवाओं का सेवक, पुरुषार्थि-जनों का उद्धारक।
भारत का प्यारा चला गया।
भारत की संस्कृति का गायक, निज भाषा का था उन्नायक,
जनता का सेवक, अधिनायक, सरताज हमारा संचालक।
प्रिय राज-दुलारा चला गया।
निर्भीक हमारा था नेता, श्यामा प्रसाद उत्तम वक्ता,
उल्लेखनीय उसकी सत्ता, व्यक्तित्व अलौकिक था उसका,
मातृत्व-सहारा चला गया।
वह था महान् शिक्षक, गुणज्ञ, वह उच्च कोटि का कूट,दक्ष,
वह राजनीति का था पण्डित, वह देश-जननि का हित-चिन्तक।
पर आज कहाँ वह चला गया ?
था वह महान, था अति महान, वह बड़े पिता का सुत महान,
वह था परम्परागत महान्, वह बंग - देश - गौरव महान।
भारत-निर्माता चला गया।
बापू - वियोग से देश दुखी, सरदार-मृत्यु से देश दुखी,
खंडित भारत से देश दुखी, श्यामा - वियोग से देश दुखी।
कश्मीर-सहारा चला गया।

युवकों के नेत्रों में आँसू, शिशुओं की आँखों में आँसू।
वृद्धों की आँखों में आँसू, नारी के नेत्रों में आँसू।
वह तरुण तपस्वी चला गया।

आलोचक वह था अति महान, संचालक वह था अति महान,
उन्नायक वह था अति महान, उद्धारक वह था अति महान।
वह भाग्य-विधाता चला गया।

बंगाल दुखी, पंजाब दुखी, उत्तर प्रदेश है आज दुखी,
आसाम दुखी, पंजाब दुखी, उसके वियोग में देश दुखी।
वह नव निर्माता चला गया।

[मसूरी, जून १९५६]

कौन था ?

भारत को जिसने आके जगाया वह कौन था ?
जिसने खुदी का राह दिखाया, वह कौन था ?
डूबे हुए थे मोह में; खुद गर्जियों में लोग,
कर्त्तव्य-मार्ग जिसने सुझाया, वह कौन था ?
दुष्टों की दुष्टता से सभी हो गए थे तंग,
उन पापियों पै' 'चक्र' चलाया, वह कौन था ?
कर्त्तव्य भूल बैठे थे, राजा सभी यहाँ,
नीति का फिर से पाठ पढ़ाया, वह कौन था ?
कर्त्तव्य और मोह में डूबे 'सपूत' को,
गीता का जिसने पाठ सुनाया, वह कौन था ?
ऊपर के इन तमाम सवालों का इक जवाब,
थे कृष्ण आज जिनको जहाँ कर रहा है याद।

[कोयटा, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, १९४१]

आचार्य शुक्ल के प्रति

चले गए नाविक तुम, नौका को है किसके बल पर छोड़ा ?
यात्री हैं व्याकुल सब इत उत, उनको क्यों है दिया बिछोड़ा ?

तुम्हीं बताओ देव कि नौका को हम कैसे पार लगाएँ ?
चारों ओर उठा भाटा है, किसके बल पर नाव चलाएँ ?

घोर अमा है इस अँधियारी निशि में कैसे मार्ग मिलेगा ?
कैसे इस भवसागर से हमको जाने का मार्ग मिलेगा ?

तुम आलोचक, लेखक, कवि थे, पर न तुम्हें हम दे कुछ पाए,
आज, किन्तु, तव मृत्यु दुखद सुन, खड़े हुए हैं हम मुँह बाए।

नहीं जानते, कैसे इस क्षति को हम पूरा कर पाएंगे ?
तुम सा शान्त, मनस्वी, साधक, अपने में कैसे पाएंगे ?

हिन्दी - माँ पर छाए संकट, बाधाएँ है दाएं - बाएं,
अपने ही जब बने विगाने, तब बेगाने क्यों शरमाएं ?

ऐसा दो वरदान कि गुरुवर, तव संकल्प करें पूरा सब,
हिन्दी-माँ की सेवा में हम, अर्पण कर दें तन, मन, धन सब ॥

[लाहौर, शुक्र निधन तिथि]

महाकवि निराला

कवि, लेखक, मानव तुम महान, तुमको प्रणाम, सबका प्रणाम।
युग-नेता तुम, युग - अग्रदूत, तुम जीवन - दर्शन मूर्त्त रूप,
कविता-कामिनि के प्राणरूप, मानवता के उज्ज्वल स्वरूप,
तुम कलाकार के अमर गान, उत्तम ललाट, गुण-गण-निधान,
तुम राम कृष्ण के आराधक, स्वामी 'विवेक' के अनुमोदक,
तुलसी-गाथा-यश के गायक, विधवा, भिक्षुक के उन्नायक,
तुम आज बसे हो प्राण प्राण, कवि के गौरव, शोभा महान।
तुम कोमल हृदय, महा पावन, मानव-गौरव हित हो पाहन,
निज संस्कृति, भाषा के पोषक, निज भाषा के तुम उन्नायक,
निज मर्यादा का तुम्हें ध्यान, कविवर, तुमको मेरा प्रणाम ॥
कहता जग 'हो विक्षिप्त आज', क्या सच कहता मानव समाज ?
लगता मुझको दोषी समाज, अपराधी है हिन्दी-समाज,
भावी पीढ़ी पर ऋण महान, तुमको प्रणाम, शत शत प्रणाम।
भारत स्वतन्त्र है, भाग्य फिरा, है मुक्त गगन-उन्मुक्त धरा,
वाणी अब भी है पराधीन, 'पन्द्रह वर्षों' तक पद-विहिन,
सन्तप्त हुए मन और प्राण, शत शत प्रणाम, शत शत प्रणाम।
व्यक्तित्व तुम्हारा आकर्षक, वाणी भी है चित्ताकर्षक,
तव एक एक पद उन्नायक, तुम हो वाणी के स्वर गायक।
है कण्ठ तुम्हारा उन्मादक, हैं नेत्र तुम्हारे अति ललाम।
कवि, क्षम्य हमारा धृष्टभाव, लज्जित हम, उद्धत है स्वभाव,
हैं अति कृतघ्न औ' अविवेकी, हैं झूठे, दम्भी औ' स्वार्थी।
कविवर, हो सद्बुद्धि-प्रदान, कर्त्तव्य-परायण बनें प्राण
असिधारा-व्रत के व्रति महान, शत शत प्रणाम-शत शत प्रणाम।
[दिल्ली, निरालाजयन्ती, वसन्तोत्सव सं० २०१०]

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर

हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर, भारत का नर-वीर चढ़ा,
गौरी - शंकर की चोटी पर, भारत का नरधीर चढ़ा।
तुङ्ग हिमालय शृङ्ग झुकाया, मानव का साहस कितना ?
राष्ट्र-पताका भी फहराई, युवक बली का बल इतना !
मानव का साहस इतना है, सागर को भी वश कर ले,
गगन-लोक में उड़ा फिरे, पाताल-लोक का भ्रमण करे।
मानव साहस का पुतला है, प्राण हथेली पर रखता,
नई - नई खोजें है करता, साहस का परिचय देता।
कभी नदी-जल बाँधे फिरता, कभी गगन पर उड़ता है,
नभचर, जलचर और भूमिचर-बन यह उड़ता - फिरता है।
युवक, वीरवर, तेनसिंह, तुम साहस के परकाले हो,
अभिमानी पर्वत को जीता, भारत माँ के अति प्यारे हो।
मार्ग-प्रदर्शन किया देश का, किया युवक-बल-आवाहन,
विस्मित सारा विश्व आज, सब ओर तुम्हारा अभिवादन।
युग - युग जिओ, वीर सेनानी, अभी बहुत कुछ है करना,
भारत माता के ललाट को, जग में उन्नत है करना।
धन्य 'हिलारी', धन्य 'हण्ट', जग तुम्हें बधाई है देता,
धन्य तुम्हारा संचालन है, इसकी घर - घर है चर्चा।

मसूरी, जून, १९५३]

शत - शत प्रणाम

श्रद्धेय पिताजी को प्रणाम, माताजी को मेरा प्रणाम।*
शत - शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम।
दोनों का अविचल प्रेम शुद्ध, दोनों का अविरत प्रेम शुद्ध,
ममता दोनों की शुद्ध बुद्ध, थी स्वार्थ - भावना अतिनिरुद्ध,
मनसा वाचा वेअति ललाम, मेरा प्रणाम, शत-शत प्रणाम।
दोनों थे सफल गृही जग में, दोनों ही रत थे निज मग में,
थे शूल-फूल उनके पग में, थे अडिग, अचल इस अग-जग में,
जीवन-पथ में कैसा विराम ? मेरा प्रणाम, शत-शत प्रणाम।
समझौता सीख न पाए थे, निज पथ पर कदम बढ़ाए थे,
अन्तर्ध्वनि को सुन पाए थे, कर्त्तव्य - क्षेत्र में धाए थे,
यात्रा उनकी नयनाभिराम, मेरा प्रणाम, शत- शत प्रणाम।

---

* [२३ अगस्त, १९४७ को मध्याह्नोत्तर पूज्य पिता स्व० बालकृष्णजी स्टेशन मास्टर, बादामीबाग़ (लाहौर); पूज्य माता सौ० यमुनादेवीजी तथा रेलवे के दो सेवकों के साथ मुसलमान गुण्डों द्वारा धोखे से कत्ल हुए। स्टेशन पर खड़ी मुस्लिम पुलिस आँखों से तमाशा देखती रही! उनका एकमात्र अपराध हिन्दू होना था। रेलवे लाइन के उस पार डोगरा फ़ौज थी, किन्तु वह कुछ देर से घटनास्थल पर पहुँची। निहत्थे पिताजी अनेक गुण्डों का सामना करते हुए मुसाफ़िरखाने में आकर लड़खड़ा गए। डोगरा फ़ौजियों के द्वारा वे सर गंगाराम अस्पताल पहुँचाए गए और वहीं उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की।

वे 'बालकृष्ण' थे मनमोहन, 'यमुना' थीं राधा आई बन,
सुख में दोनों थे हर्ष - सदन, दुख में भी दोनों हर्ष - वदन,
समदु:ख-सुखी, थे वे अकाम, मेरा प्रणाम, शत-शत प्रणाम।

वे जमे रहे, वे अड़े रहे; कर्त्तव्य - मार्ग पर खड़े रहे,
जलती पावक में खड़े रहे, छाती निकाल कर भिड़े रहे,
रक्षक ही थे भक्षक तमाम: मेरा प्रणाम, शत - शत प्रणाम।

विदाई पर

नीर - क्षीर के पारखो, 'हँस'[1] हँस - अवतंस,
उदयभानु हो 'भानु' तुम, करो अविद्या - ध्वंस।

कवि, व्याख्याता, मार्मिक, अध्यापक अवदात,
लेखक, टीकाकार, तुम, धन्य तुम्हारी मात।

कलाकार हो उच्च तुम, भावुक, हृदय विशाल,
बढ़ने की है भावना, उन्नत है तव भाल।

अस्त्र तुम्हारी लेखनी, कलम-शूर हो वीर,
भारत की सेवा करो, हरो देश की पीर।

अवसर है तुमको मिला, लो उसका उपयोग,
हिन्दी की सेवा करो, तजो नहीं उद्योग।

बढ़ो, फलो, फूलो सदा, साहस हो तव ढाल,
तन, मन, औ' धन से रहो, सदा सतत खुशहाल।

प्रभु के उस दरबार में, देर, नहीं अन्धेर,
उसे नहीं तुम भूलना, सुनता सबकी टेर।

---

१. प्रिय श्री उदयभानु 'हँस' एम० ए० की गवर्नमेंट कालेज, हिसार में नियुक्ति पर दिल्ली से उनकी विदाई के अवसर पर पठित।

धूप बढ़ती जा रही है

सूर्य की किरणें खिली हैं,
भूमि से जाकर मिली हैं,
भग गया तम, चन्द्र भागा, नव उषा मुसका रही है।

रात ओझल हो गई है,
प्रात निर्मल हो गई है,
छिप गए तारे गगन में, लालिमा यह छा रही है।

रात बीती, दिन हुआ है,
'मौन' बीता, 'कल' हुआ है,
मच रही हलचल मही पर, खूब कलकल आ रही है।

सो उठा अब नींद से जग,
बोलते हैं नीड़ में खग,
चल पड़े हैं काम पर सब, ताज़गी अब आ रही है।

यन्त्र सा जीवन है' चलता,
यन्त्र सा मानव है' चलता,
यन्त्र सा संसार चलता, वह दुपहरी आ रही है।

ज़िन्दगी का चक्र चलता,
रात दिन है 'व्यूह' रचता,
थक गया है आज मानव, दुख, उदासी छा रही है।

[कलकत्ता, २३-२-५७]

बनेगा स्वर्ग यह भारत

बनेगा स्वर्ग यह भारत, अँधेरा भाग जाएगा।
बनेगा शस्य-श्यामल यह, 'कुहा' सब भाग जाएगा॥

हमारा देश सदियों की ग़ुलामी से हुआ आज़ाद,
अँधेरी रात के पीछे, चमकता प्रात आएगा।

छिनी भाषा, छिनी संस्कृति, छिना वह वेष भी अपना,
गया अँग्रेज़ भारत छोड़, फिर वापिस न आएगा।

हमारा धन लुटा, व्यापार, कौशल-सब लुटे, साथी,
हमें पुरुषार्थ करना है, गया सब लौट आएगा।

हमें मिलकर के' पतझड़ को यहाँ से दूर करना है,
वसन्ती साज से फिर देश को लहराया' जाएगा।

अशिक्षा को भगाना है, ग़रीबी को मिटाना है,
कला - कौशल तथा व्यापार सारा लौट आएगा।

हमें निर्माण करना है, कहाँ आराम करना है ?
अनुर्वर भूमि को उर्वर बनाया फिर से जाएगा।

बनाने बाँध हमको हैं, बनानी रेल, पटरी हैं,
हमारे देश का हर गाँव, फिर से जगमगाएगा।

हमें सड़कें बनानी हैं, हमें पुल भी बनाने हैं,
हमारा शत्रु है आलस्य,' कहाँ यह चैन पाएगा ?

जवाहर वीर नेता जब, हमें फिर आज किसका डर ?
तिरङ्गा हाथ में लेकर नया युग लाया' जाएगा।

[कलकत्ता, २४-२-५७]

भारत माँ की अमर कहानी

भारत माँ की अमर कहानी, हरदम सबको याद रहेगी,
सूर्य चन्द्र हैं जबतक नभ पर, युगों - युगों आबाद रहेगी।

राम कृष्ण की, बुद्ध, शिवा की, गान्धीजी की अमर कहानी,
त्याग, शौर्य, बल, धर्म, ज्ञान की, औ' विवेक की, अमिट निशानी,
मिट न सकी है, मिट न सकेगी, बलिदानों की अमर कहानी,
मिट सकते हैं धरा - गगन, पर, अमर कहानी याद रहेगी।

भारत था सोने की चिड़िया, इसको ग़ारत किया फूट ने,
भारत था यह हरा - भरा पर, इसको ग़ारत किया 'कूट' ने,
भारत की थी शान निराली, इसे दबाया भूख, 'लूट' ने,
सामन्ती शासन में लुटती सुघड़ जवानी याद रहेगी।

अभी नहीं हम भूले अपनी, झाँसी वाली रानी को,
अभी नहीं हम भूले जलियाँवाला - बाग़ कहानी को,
अभी नहीं हम भूले सन् सत्तावन अमर रवानी को,
लालाजी पर बरसीं वे लाठी शैतानी याद रहेंगी।

नहीं भूल सकते हम 'नाना', तात्यांटोपे जैसे वीर,
भगतसिंह, 'आज़ाद', 'दास' हैं, अमर राष्ट्र भारत के वीर,
तिलक, गोखले, गान्धी जैसे नेता थे सच्चे रणधीर,
युग - युग तक उनकी सिंह - ध्वनि, घर-घर में आबाद रहेगी।

अमर हमारे 'नेताजी' हैं, वे नेताओं के सरताज,
भारत को आज़ाद कराने, सहे उन्होंने कितने गाज !
वीर जवाहर नर - नाहर हैं, करते आज दिलों पर राज,
नहीं आज 'सरदार' हमारे, अमिट निशानी याद रहेगी।

भारत है आज़ाद, मगर वह 'कूट - कहानी' जारी है,
भारत है आज़ाद, मगर वह रीति पुरानी जारी है,
भारत है आज़ाद, मगर वह नीति पुरानी जारी है,
आज़ादी के बलिदानों की अमर कहानी याद रहेगी।

चले गए अँग्रेज़, मगर, अँग्रेजी अब भी छाई है,
चले गए अँग्रेज़, मगर, नौकरशाही तो भाई है,
चले गए अँग्रेज़, मगर, उनकी अब भी बन आई है,
देश - विभाजन के कलंक की अमिट निशानी याद रहेगी।
[कलकत्ता, २३-२-५७]

●

धूप ढलती जा रही है

सूर्य की किरणें प्रकाशित, तप गया यह सकल अग-जग,
ले चुके विश्राम पन्थी, फिर से' यात्रा भा रही है
थक गये हैं काम करके, लोग निकले जो सदन से,
याद घर की है सताती, प्यार की स्मृति आ रही है।
विहग भी दिन भर उड़े हैं, जोड़ कण-कण कर थके हैं।
मन में' पर उनके ख़ुशी है, 'नीड़' की सुधि आ रही है।
चल रही घर में प्रतीक्षा, 'नाथ आएँ' है यह इच्छा,
समय कटता हीं नहीं है, 'कूक' कोयल गा रही है।
[कलकत्ता २३-२-५७]

●

मैं अपनी राह चला जाता

मैं अपनी राह चला जाता
अलमस्त बना फिरता गाता।
तारे भी मुझ पर मुस्काते,
चन्दा भी मुझ पर मुस्काता।
फूलों से मुझको प्यार नहीं,
कण्टकमय पथ का हूँ त्राता।

चलते जाना ही जीवन है,
बढ़ते जाना ही जीवन है।
लड़ते जाना ही जीवन है,
संघर्षों में हँसता गाता।

मुझ को जग की परवाह नहीं,
मुझ को दुख की परवाह नहीं।
मुझ को सुख की परवाह नहीं,
मैं दुख-सुख से लड़ता जाता।

बिजली की है परवाह नहीं,
मेघों की भी परवाह नहीं,
दुष्काल अकाल की राह सही,
आहों से है मेरा नाता।

जो भिखमंगे हैं, लंगड़े हैं,
जो कोढ़ी हैं, जो अन्धे हैं।
जो बहरे हैं, जो गन्दे हैं,
मैं उनका सेवक बन पाता!
मैं अपनी राह चला जाता।

[कलकत्ता २३-२-५७]

●

चांद से जितनी दूर सितारे

मन्ज़िल उतनी दूर, चांद से जितनी दूर सितारे
थका बटोही चलते-चलते, पग उसके हैं हारे।

जीवन भर चलता ही आया, चलते जैसे तारे,
पर न अभी मंज़िल पाई है, यात्री खड़ा किनारे।

यात्रा लम्बी, पथ अनदेखा, ऊबड़-खाबड़ धरती,
आँधी औ' तूफ़ान भयङ्कर, अकुलाए हैं पन्थी।

अन्धकार ही अन्धकार है, ऊपर नीचे, इत उत,
किंकर्त्तव्य-विमूढ़ खड़ा है, देख रहा है जित तित।

चलते-चलते हार गया है, पहुँचा नहीं किनारे,
थका बटोही, चलते-चलते, पग उसके हैं हारे।

जीवन-यात्रा चलती रहता, मानव है घबराया,
मोह, राग, अभिमान भरे हैं, उसका मन थर्राया।

दुख-सुख की है आँख मिचौनी, माया-ममता घेरे,
पग-पग पर डिगने का अवसर, बैठा है मन मारे।

आया था इस जगमें जब यह, तब था बहुत पुकारा,
जगदीश्वर ने इसको भेजा, इसने उसे भुलाया।

डगमग जीवन-नौका डोले, इच्छा-'लगे किनारे,'
मंज़िल उतनी दूर चांद से जितनी दूर सितारे॥

[कलकत्ता, २६-३-५७]

●

बढ़े चलें, बढ़े चलें

बढ़े चलें, बढ़े चलें, बढ़े चलें, बढ़े चलें।

डरें नहीं, लड़ें नहीं, देश-प्रेम हम करें,
देश के लिए जिएँ, व' देश के लिए मरें।
माँ हमें पुकारती, माँ हमें दुलारती,
भारतीय वीर हम, कुछ नहीं है' हमको ग़म।
कदम-कदम मिला चलें, ख़ुशी के गीत गा चलें।

बढ़े चलें, बढ़े चलें, बढ़े चलें, बढ़े चलें।

माँग आज देश की, है' माँग आज विश्व की,
मनुष्यता पुकारती, है' सभ्यता पुकारती।
समय की माँग हम सुनें, बड़ों का मान हम करें,
नहीं विराम हम करें, प्रगति - प्रयाण हम करें।
कदम - कदम बढ़ा चलें, मुसीबतें हटा चलें,

बढ़े चलें, बढ़े चलें, बढ़े चलें, बढ़े चलें।

नहीं किसीसे हम लड़ें, नहीं किसीको हम छलें,
मित्रता निभा सकें, सत्य को बढ़ा चलें,
अधर्म को मिटा चलें, अनीति को हटा चलें।
विकास ओर हम बढ़ें, प्रगति की' ओर हम बढ़ें,
चले चलें, रुकें नहीं; थकें नहीं, बढ़े चलें।

बढ़े चलें, बढ़े चलें, बढ़े चलें, बढ़े चलें।

[कलकत्ता, १०-२-५७]

●

अब क्यों तू रोता है ?

यह जग तो है गोरख धन्धा, आंखें हैं, पर फिर भी अन्धा,
आकर्षण हैं दाएँ बाएँ, व्यापक है इसका यह फन्दा।
शूल फूल मिस क्यों बोता है ?

पथ-भूला हो बैठा मानव, मानवता तज बनता दानव।
मृग-तृष्णा सी इसकी तृष्णा, है अतृप्त सदा से रसना।
मन में पीर सदा बोता है !

स्वामी होकर भी है सेवक, रक्षक होकर भी है भक्षक।
भूल गया तू अपना करतब, बदल गए हैं तेरे वे ढब।
जीवन भार समझ ढोता है।

पापों ने तुझको है घेरा, मोह, स्वार्थ का तू है चेरा।
माया तृष्णा ने मन फेरा, निज कर्त्तव्य न तूने हेरा।
क्या पछताए अब होता है ?

अब भी तनिक सँभल जा प्यारे; मन की आंखें खोल ज़रा रे।
सोच ज़रा, मनमें शरमा रे, मत अपने मन को भरमा, रे।

जग जागा है, तू सोता है, पागल, अब तू क्यों रोता है ?

[कलकत्ता, २३-२-५६]

जय जय प्यारा हिन्दुस्तान

जय जय प्यारा देश महान्, जय जय प्यारा हिन्दुस्तान।
मस्तक इसका है गिरिराज, बाज़ू हैं असाम, पंजाब।
टांगें इसकी दक्षिण देश, कुदरत ही है इसका वेष।
जय जय प्यारा देश महान्, जय जय प्यारा हिन्दुस्तान।
गंगा-यमुना हैं श्रृंगार, काश्मीर से हमको प्यार।
धरती पर दें तन मन वार, कभी नहीं हम सीखे हार।
करें तिरंगे की हम शान, जय जय प्यारा हिन्दुस्तान।
बंग, आंध्र, मद्रास, बिहार, महाराष्ट्र, मैसूर कछार।
उत्तर, मध्य-प्रदेश, महान्, केरल, उड़िसा हैं वरदान।
मुम्बा-देवी रख ले आन, जय जय प्यारा हिन्दुस्तान।।

[कलकत्ता, १० फरवरी १९५७]

बलिदान - दिवस पर

यह वही दिन है कि हम लौट के' घर आए थे,
सत्य के वास्ते अपने को मिटा आए थे।
खूँ शहीदों का कभी व्यर्थ नहीं जाता है,
उनको तख्ते पै लिटा, आन बचा लाए थे।
जेल की सख्तियाँ, खुश होके सहीं थीं हमने,
फिर भी उफ़ हमने, न की, हम भी तो माँ-जाए थे।

हम तो परवाने हैं, मिटना ही हमारा है काम,
शमाए - सत्य जला, ख़ुद को मिटा आए थे।
मिट गए बीस, मगर नाम है ज़िन्दा उनका,
देश वालों के लिए, मार्ग बना आए थे।
सिर झुका जाता है, चरणों को पकड़ने के लिए,
हैदराबाद गए, होके फ़तह आए थे।
[क्वेटा, बलिदान-दिवस (हैदराबाद सत्याग्रह) १९४१]

●

हिन्दी-नाद

हे हिन्दी, हिन्दी अपनाओ, घर घर हिन्दी-नाद बजाओ।
हिन्दी सुकर राष्ट्र की भाषा, हिन्दी भारत की अभिलाषा।
हिन्दी आज हमारी भाषा, हिन्दी हम सबकी है आशा,
हिन्दी को सब मिल अपनाओ।
पंचनदों की इस भूमि में, आर्य-गणों की इस भूमि में।
'रासो' के कवि की भूमि में, दस गुरुओं की इस भूमि में।
हिन्दी का सन्देश सुनाओ।
हिन्दी पर है संकट आया, गुरु-वाणी पर संकट आया।
हमको तो है होश न आया, हमने अपना आप गँवाया,
अब भी चेतो, जगत जगाओ॥
तुलसी को क्या भूल सकोगे ? 'सूर, सूर' बिन क्या जी लोगे ?
मतवाली 'मीरा' भूलोगे ? अब भी कुछ तो तुम शरमाओ,
घर घर हिन्दी नाद बजाओ।
[लाहौर, १९४०]

●

हिन्दी गान

हैं हिन्दी देश के, भाषा है हिन्दी,
भले मिट जाएँ, मिट सकती नहीं हिन्दी।
यह हिन्दी है, सरल संसार-भाषा,
सभी भाषाओं की रानी है यह हिन्दी।

ये चारों वेद जिस भाषा में आए,
उसी से जन्म पा पनपी है यह हिन्दी।
भुलाएँ वेद गीता - शास्त्र कैसे ?
करें कैसे अलग, हम मन से यह हिन्दी।

भले ही सख्तियाँ हों लाख हम पर,
छुड़ा सकता न कोई हम से है हिन्दी।
अगर अँग्रेज़ पढ़ सकते हैं इङ्गलिश,
छुड़ा सकता न 'हिन्दी' से कोई हिन्दी।

है कैसा आज आया वक्त देखो ?
कि माताएँ भी पढ़ सकती न हिन्दी।
यह भारत 'भारती' है देश अपना,
औ' भारत - भारती है आज हिन्दी।

[लाहौर, १-१-४१]

●

हिन्दी नौजवान तू

हिन्दी नौजवान तू, हिन्दी के सन्देश को,
हिन्द के घरानों में ज़ोर से सुनाए जा।
हिन्दी-नाद बजाए जा।

हिन्दी हिन्द की है ज़बान,
हिन्दू हो या मुसलमान,
हिन्दी के इस झण्डे को शान से फहराए जा।
हिन्दी पढ़े पढ़ाए जा।

हिन्दी मेरी शान है, हिन्दी मेरा प्राण है,
'हिन्दी से ही देश का कल्याण है,' बताए जा।
हिन्दी-राग सुनाए जा।

बापू का फ़रमान यह, जवाहर का एलान यह,
हिन्द के सपूत हे, हिन्दी को अपनाए जा।
हिन्दी सीख, सिखाए जा॥
हिन्दी-नाद बजाएजा॥

[कोयटा (बलोचिस्तान) जुलाई, १९४२]

अभिनन्दन

स्वास्थ्य-सुधे,[1] अभिनन्दन तेरा, भारत स्वस्थ बनाओ फिर से,
राम, कृष्ण, अर्जुन, प्रताप से योद्धा वीर बनाओ फिर से।
दूध, दही की नदियाँ घर-घर बहें देश मेरे में फिर से,
सच्चे ब्राह्मण, क्षत्रिय बनकर अपने कार्य करें हम फिर से।
फिर से हमें बता दो जीवन सुन्दर, सात्विक सरल बनाना,
फिर से हमें बता दो, निज कर्त्तव्य-मार्ग पर कदम बढ़ाना,
फिर से हमें बता दो, जीना, जीवन को कैसे अपनाना,
फिर से हमें बना दो, अपनी जन्म-भूमि पर बलि बलि जाना।
वीर बनें, व्रतधीर बनें, सुविवेकी औ' गम्भीर बनें,
हम बढ़े चलें अपने पथ पर, तूफ़ानों को भी चीर चलें।
बिजली कड़के, तूफ़ान उठे, सागर की लहरें टकराएँ,
फिर भी निज पथ की ओर बढ़ें, बढ़ते ही आगे चले चलें।
अब अपना और पराया क्या, सब ही तो भाई भाई हैं,
भारत स्वाधीन हुओ तो है, पर बापू नहीं सहाई हैं।
पृथ्वी को स्वर्ग बना डालें, जीवन आदर्श बना डालें,
हो आग भरी दिल में हर दम, सब आपस में हम गले मिलें।
फिर बने हमारी पुण्य भूमि; सुजला सुफला औ' हरी भरी,
सोने की चिड़िया बने पुनः, हो सुखी सुशोभित मातृ-मही।
पुरुषार्थ हमारा सम्बल हो, शूलों को फूल बना डालें,
मधुमय यह देश हमारा हो, इसको उन्नत हम कर डालें।

---

१ 'मासिक स्वास्थ्य-सुधा,' दिल्ली के प्रथम अंक के लिए लिखित।

[दिल्ली-१९४८]

उल्टी सीधी बातें

है बनी भाषा यह हिन्दी देश की,
पर नहीं उत्साह, हममें है अभी
अब भी, अंग्रेजी, ही, चलती जा रही
बस गए हैं देश में अंग्रेज़ ही।

'पाप है रिश्वत'—की चर्चा सब कहीं,
पर न होती बन्द रिश्वत देश में,
पूछता कोई नहीं लाखों की भेंट,
चन्द टुकड़ों के लिए है हथकड़ी।

दिन दहाड़े न्याय बिकता सब तरफ़,
पर पकड़ में आ रहे सेवक नज़र,
है कहाँ का न्याय, साथी, तुम कहो ?
पाप बढ़ने में नहीं कोई कसर।

शिव की' पूजा आज भी है हो रही,
पर दया-आनन्द कितने हैं बने ?
नाम-लेवा शिव के', अब भी हैं अनेक,
पर तड़प कितने दिलों में अब मिले ?

मर्द वह है, जो समय से सीख ले,
काल के वश में हैं' जाते यों सभी,
भावना का ही तो' केवल प्रश्न है,
भावना से शिव भी' होते हैं वशी।

सब तरफ़ नारे ही' नारे लग रहे,
काम की चर्चा कहीं होती नहीं,
देश में नेताओं की तो भीड़ है,
है कमी अनुयायियों की ही बनी।

गालियाँ देना बड़ा आसान है,
प्यार करना पर कहीं मुश्किल ज़रा,
तोड़ना हर चीज़ का आसान है,
औ' बनाना है कठिन उस चीज़ का।

योजनाएँ नित नई हैं बन रहीं,
पूर्ण पर होती नहीं सारी कभी,
बात बेढ़ब है, मगर बिल्कुल सही,
कागज़ों की नाव है बस चल रही।

घट रही घटनाएँ, प्रतिदिन हैं अनेक,
सीख लेता पर कोई' लाखों में एक,
काम इतने हैं कि फ़ुर्सत ही नहीं,
काम करने की नहीं पर हमको टेक।

●

भारत है स्वाधीन

सदियाँ बीती हैं सोने में, औ' युग बीते हैं रोने में,
पराधीनता से हम छूटे, आज हुए स्वाधीन।
जगा ज़माना, हम भी जागे, युग-युग की तन्द्रा से जागे,
बन्धन-मुक्त हुए हम फिर से, कौन कहे-हम दीन ?
हम न किसी से वैर करेंगे, हम न किसी से द्वेष करेंगे,
हम तो सबसे गले मिलेंगे, निर्धन हो या हीन।
सोने के दिन चले गए वे, रोने के दिन चले गए वे,
खोने के दिन चले गए वे, हम न किसी के मीन।
भेद-नीति अब नहीं चलेगी, कूट-नीति अब नहीं चलेगी,
दण्ड-नीति अब नहीं चलेगी, लिया सभी कुछ छीन।
आशा आज हमारा सम्बल, बाधाओं से डरें न, लें बल,
शाँति हमारा मूल-मंत्र है, प्रगति हमारी बीन।
आगे बढ़ना हमने सीखा, संघर्षों से लड़ना सीखा,
कदम मिला कर चलना सीखा, हम हैं शाँति-धुरीण।
'पंचशील' पर डटे रहेंगे, हम हिंसा का मार्ग न लेंगे।
हमलावर से खूब भिड़ेंगे, हम न किसी से हीन।

[कलकत्ता, २३-२-५६]

●

मंगल - कामना*

पश्चिम की औषधियाँ तजकर, अपनाएँ हम आयुर्वेद,
देशी औषधियाँ अपनाएँ, भूलें नहीं पुराना भेद।
आयुर्वेद हमें बतलाता, निज शरीर की सब बातें,
आयुर्वेद हमें सिखलाता, स्वास्थ्योन्नति की सब बातें।

आयुर्वेद हमें बतलाता — प्रकृति हमारी है कैसी ?
पित्त प्रकृति है, वात प्रकृति है, अथवा है प्रकृति कफ़ की,
रोगों का निदान बतलाता, उपचर्या की गति-विधि भी,
आयुर्वेद हमें सिखलाता, जीवन स्वस्थ बनाना ही।

हमने अपना सभी भुलाया, भाषा, असन, वसन औ' चाल,
'पर' को अपना कर 'निज' भूले, भूली मर्यादा औ' काल,
वर्षों के बन्धन सब टूटे, मुक्त देश अब है जागा,
सुप्त सिंह की निद्रा टूटी, पश्चिम का भय भी भागा।

किन्तु, अभी पश्चिम का जादू, हमको मोहित है करता,
टीकों को हमने अपनाया, कोटि - कोटि धन है हरता।
अपनानी है सभी अच्छाई, त्यागें हम सब दुरिताएँ,
'निज' 'पर' की ममता को त्यागें, अच्छी बातें अपनाएँ।

शल्य शास्त्र को है अपनाया, आयुर्वेद महा बल है,
निज संस्कृति की देन हमारी, मिलता यहाँ अतुल फल है।
दूध दही घर - घर में हो फिर, स्वस्थ बनें सब नर- नारी,
सुखी रहें परिवार हमारे, दूर भगे चिन्ता सारी।

गौएँ दूध भरी भारत में, अनड्वान[1] हों बलशाली,
सच्चे ब्राह्मण, क्षत्रिय फिर हों, वैश्य, शूद्र सेवाधारी।
भारत फिर से देव-भूमि हो, रामराज्य स्थापित होवे,
भगे यहाँ से सभी व्याधियाँ, कभी अकाल नहीं आवे।

अनावृष्टि, अतिवृष्टि न हो, सर्वत्र सुखों की वर्षा हो,
शान्त रहे वसुधा यह सारी, सुखी हमारा देश बने,
स्वस्थ रहें हम, रोग भगें सब, सुखी हमारा देश बने,
निज संस्कृति को हम अपनाएँ, विश्व पुनः यह आर्य बने।
[दिल्ली, २२ अगस्त, १९५३]

---

१. बैल * नांगिया आयुर्वेदिक कन्या महाविद्यालय दिल्ली के उद्घाटन-महोत्सव के शुभ अवसर पर राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन की अध्यक्षता में पठित।

●

पहले जो कभी........

पहले जो कभी हिन्दी का ध्यान किया होता,
तो फिर न कभी ऐसा, मन म्लान हुआ होता।
उर्दू, अंग्रेज़ी की कुछ होड़ न बन आती,
हिन्दी को पढ़ाने का गर नाम लिया होता।
होती न किसी की भी ऐसी मजाल फिर भी,
जयचंदों की हसरत को पामाल किया होता।
मीरा के ये पुजारी, मीरा न भूल जाते,
गीता से हमने घर - घर गर प्यार किया होता।
भारत के खण्ड करने का स्वप्न कौन लेता ?
गर हिन्द में हिन्दी का कुछ मान किया होता।
[सरदारशहर (राजस्थान) जनवरी, १९४४]

●

परिशिष्ट

श्री दीपचन्द 'रफ़ीक'

श्री दीपचन्द 'रफीक' से मेरा परिचय सन् १९३१-२ में हुआ, जब वे श्री दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय लाहौर में अध्ययन के लिए प्रविष्ट हुए। उन्हें मलोट मण्डी, ज़िला फ़िरोज़पुर से चौधरी हरजीरामजी ने विद्यालय में भिजवाया था। वे उर्दू के एक अच्छे कवि थे। एकान्तप्रियता अपनी धुन में मस्त रहना तथा उनकी आत्म-विश्वास की भावना के कारण मैं उनके सम्पर्क में आया। हम दोनों—एक ही श्रेणी के छात्र थे। उनकी आयु मुझ से काफ़ी अधिक थी। वे प्रायः उर्दू में ही लिखते थे। उर्दू मेरी प्रथम भाषा थी। उर्दू शायरी में मेरी परम्परागत रुचि रही है। पिताजी तो उर्दू के अतिरिक्त 'फ़ारसी' तथा 'पश्तो' के भी जानकार थे। मुझे कविता-क्षेत्र में लाने का श्रेय श्री 'रफ़ीक' को ही है। वे सच्चे 'रफ़ीक' (मित्र) थे। वे दिन-रात लिखने में व्यस्त रहते थे। उनकी घरेलू स्थिति अच्छी न थी। उन्हें अपने जीवन में काफ़ी संघर्षों का सामना करना पड़ा। परिणाम-स्वरूप अधिक कार्य करने से उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। उनपर 'क्षय' ने आक्रमण किया तथा उन्हें लाहौर के मेयो हस्पताल में प्रविष्ट कराया गया। अस्पताल में ही उनकी मृत्यु हो गई—फूल खिलते ही मुरझा गया !

यह सम्भवतः १९३३-३४ की बात है। जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी कुछ सेवा करने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी लिखी हुई सैकड़ों अप्रकाशित रचनाएँ (कविताएँ आदि) मेरे पास थीं—

पत्र भी काफ़ी थे। उनके सम्बन्ध में मैंने कुछ लिखना भी आरम्भ किया था। मेरी इच्छा थी कि उनकी रचनाएँ हिन्दी-संसार को भेंट करूंगा, किन्तु देश-विभाजन के कारण सब कुछ बादामीबाग़ (लाहौर) में ही रह गया। 'निर्भर' के प्रथम संस्करण के प्रकाशित होने पर मैंने पाठकों को वचन दिया था कि उन्हें शीघ्र ही "रफ़ीक और उसकी कविता" के दर्शन होंगे, किन्तु मैं अपना वचन पूर्ण नहीं कर पाया। सन् १९५१-२ में ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया (राजस्थान) जाने पर मैं वहाँ से अबोहर व मलोट-मण्डी गया तथा उनके सम्बन्ध में चौधरी हरजीराम से भी मिला, किन्तु उनसे अधिक जानकारी प्राप्त न हो सकी। इस सम्बन्ध में मैं अब भी निराश नहीं हूँ। प्रयत्न करना ही तो मनुष्य के हाथ में है।

पूज्य पिताजी तथा माताजी

पूज्य पिता श्री बालकृष्णजी तथा पूज्य माता श्रीमती यमुना देवीजी आज इस संसार में शरीर रूप से भले ही न हों, किन्तु वे अमर हैं। उनकी स्मृति परिवारवालों तथा मित्रों के लिये आज भी वैसी ही बनी हुई है।

पिता जी का जन्म १९ वीं शताब्दी की अन्तिम दशाब्दी में हुआ। उनका जन्म ग्राम-दायरा दीन पनाह, तहसील-कोटअदू, ज़िला मुज़फ्फ़रगढ़ (पश्चिमी पाकिस्तान) में हुआ। उनके पिता—मेरे दादा—श्री चौधरी नेभराजजी गाँव के एक चौधरी थे। उनकी मृत्यु आज से लगभग १९-२० वर्ष पूर्व अकस्मात्-बिना किसी रोगादि के हुई। उन्होंने स्वयं एक दिन पूर्व ही यह बतला दिया था कि वे इस संसार से यात्रा करनेवाले हैं। पिताजी उनके सबसे बड़े पुत्र थे।

बचपन में पिताजी की पढ़ाई गाँव के मकतब में मौलवी के पास हुई। आगे की पढ़ाई के लिए उन्हें कई मील नंगे पांव चलकर पढ़ने जाना होता था। सामान्य-परिवार में जन्म लेकर भी वे बचपन से ही होनहार तथा प्रतिभाशाली थे। उनका विवाह छोटी आयु में ही हो गया था। तब वे लगभग १५-१६ वर्ष के होंगे। माताजी की आयु भी उस समय लगभग १२-१३ वर्ष की रही होगी। मेरे नानाजी सम्पन्न थे, किन्तु उनकी मृत्यु हो जाने से पिताजी को उनकी जायदाद आदि की व्यवस्था के लिए नौकरी छोड़कर घर आना पड़ा। मेरे मामाजी की भी मृत्यु हो गई थी और ननिहाल की सारी व्यवस्था का भार पिताजी ने मेरे मौसा श्री जेसारामजी नागपाल पर डाल दिया, जिसे उन्होंने मृत्यु-पर्यन्त अच्छी प्रकार से निबाहा। माताजी की दो बहिनें थीं। मेरी छोटी मौसी श्रीमती हरदेवीजी की मृत्यु उनके विवाहके कुछ ही समय के पश्चात् हो गई थी। बड़ी मौसी श्रीमती तुलसीबाई आज भी उस परिवार की एकमात्र सन्तति (कन्या) के रूप में विद्यमान है। मौसा जी की मृत्यु लगभग दो वर्ष पूर्व 'सोनीपत' (पंजाब) में हो गई। नानीजी भी अब इस संसार में नहीं हैं। उनकी मृत्यु भी लगभग दो वर्ष पूर्व सोनीपत (पंजाब) में हो गई थी।

पिताजी को शिक्षादि से निवृत्त होकर परिवार का सारा भार अपने ऊपर लेना पड़ा। वे रेलवे विभाग में नौकर हुए। उन्होंने स्टेशन मास्टर के रूप में छोटे-बड़े स्टेशनों पर कार्य किया। मुलतान, कोयटा, कराची, सरगोधा, कोहाट, कैम्बलपुर तथा बादामीबाग़ (लाहौर) आदि स्थानों पर उन्होंने वर्षों कार्य किया। लगभग २०) रु०

मासिक से उन्होंने नौकरी आरम्भ की। उस समय के २०) में ही उन्होंने भरे परिवार का पालन-पोषण किया। दोनों छोटे भाइयों तथा दो बहिनों को लिखाया पढ़ाया। उनके विवाह किए। मकान बनवाया। दादाजी आरम्भ से ही पूजा-पाठ तथा प्रभु-भजन में ही व्यस्त रहते थे। इस प्रकार परिवार का पूरा उत्तरदायित्व उन्हीं पर रहा। उन्होंने जीवन भर कुटुम्ब के लोगों की यथासम्भव सहायता की। उनकी दोनों बहिनें आज इस संसार में नहीं हैं। मेरे बड़े चाचा श्री किशनचन्दजी की मृत्यु दो तीन वर्ष पूर्व खरखोदा (पंजाब) में हो गई। छोटे चाचा श्री गिरधारीलाल जी आजकल बहादुरगढ़ के पास एक गाँव में कुछ कार्य करते हैं।

पिताजी ने दो बार नौकरी छोड़ी। एक बार नानाजी के देहान्त पर कौटुम्बिक परिस्थितियों के कारण तथा दूसरी बार गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के समय। वे प्रथम महायुद्ध के अवसर पर बसरा गए थे। असहयोग आन्दोलन के दिनों में वे कुछ समय गांधी आश्रम साबरमती में भी रहे। घर आकर कुछ समय तक उन्होंने खड्डी चलाई तथा मज़दूरी भी की।

वे आरम्भ से ही स्वतन्त्र विचारों के थे। वर्षों रेलवे यूनियन के प्रधान तथा अधिकारी रहे। सरगोधा में उनके विरुद्ध कुछ विरोधी वातावरण भी बनाने का प्रयत्न किया गया, किन्तु उन्होंने उसका डटकर मुकाबला किया। उन्हें सरगोधा से तबदील करके कुछ समय के बाद ही दुबारा वहीं तरक्की पर भेजा गया।

उनका जीवन अत्यन्त नियमित था। वे आस्तिक थे। गीता-

रामायण का पाठ तथा सन्ध्या आदि उनके जीवन का नित्य नियम था। लोकमान्य तिलक के 'गीता रहस्य' तथा 'तुलसी रामायण' का न जाने वे कितनी बार पाठ कर चुके होंगे। दैनिक समाचार पत्र पढ़ना उनके जीवन का एक अंग था। दैनिक उर्दू "प्रताप" के वे नियमित पाठक थे। घर का प्रायः सब कार्य वे अपने हाथों से करते थे। पशुओं की सेवा, उनके लिए चारे की व्यवस्था, बाग़बानी आदि के अतिरिक्त प्रतिदिन भ्रमण तथा व्यायाम उनके दैनिक कार्य थे। उनके जीवन का अधिकांश समय बलोचिस्तान में कटा। वे शरीर तथा स्वभाव में एक पठान के समान थे। उन्होंने अपनी बड़ी पुत्री को पुत्र के समान ही प्यार किया और उनका पालन-पोषण भी इसी प्रकार हुआ। बहिन रामदेवी जी का विवाह उन्होंने डेरा ग़ाज़ीख़ान के एक परिवार में किया।

कोयटा के भूकम्प के समय वे "मुश्काफ़" स्टेशन के स्टेशन-मास्टर थे और उन्होंने ही कोयटा के भूकम्प की सूचना तार द्वारा कोयटा से प्राप्त कर के सम्भवतः सबसे पहले रेलवे के बड़े अधिकारियों तक पहुँचाई थी।

मैं आरम्भ से ही घर से दूर रहा। पिताजी की नौकरी इस प्रकार की थी कि वे आरम्भ में कई वर्षों तक छोटे-छोटे स्टेशनों पर कार्य करते रहे। उन स्थानों पर स्कूलादि की व्यवस्था न थी। मेरा अध्ययन अधिकांश रूप से कोयटा तथा लाहौर में ही हुआ। हम बादामीबाग़ (लाहौर) में ही कुछ महीने इकट्ठे रह सके। सन् १९४७ के वे दिन मुझे आज भी अच्छी तरह से याद हैं, जब हमने गंगानगर, कांगड़ा तथा सुनाम (पटियाला) में मकानों की व्यवस्था की, किन्तु वे कहीं जाने के लिए सहमत न हुए। वे प्रतिदिन की घटनाओं को देखते तथा सुनते थे, किन्तु भगदड़ तथा भेड़-

चाल के पक्षपाती नहीं थे। उनकी धारणा यह थी कि जब हमारे नेता जनता को रोक रहे हैं, तो हमें उनकी आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। ११ अगस्त, १९४७ तक उनकी इस दृढ़ता में कोई अन्तर नहीं आया। उसी दिन लाहौर नगर में स्थान-स्थान पर आग लगी। हमारे ही स्टेशन बादामीबाग़ के पास "सिन्ध एक्सप्रेस" को ठहरा लिया गया और कई यात्रियों की दिन-दहाड़े हत्या कर दी गई। उस दिन भी वे नियमानुसार अपना कार्य कर के घर आए। गाय भैंसों की सेवा की, उन्हें दाना आदि देकर दूध निकाला व सन्ध्या की। हमने इकट्ठे भोजन किया। तब चर्चा चली कि बच्चों को वहां से भिजवा देना चाहिए। बातें चलती रहीं। ११$\frac{3}{?}$ बजे रात्रि को जाकर यह निश्चय हुआ कि मुझे परिवार के सब लोगों को साथ लेकर भारत में कहीं चले जाना चाहिए और माता जी उनके पास ही रहें, क्योंकि भरा घर था। मुझे हार माननी पड़ी और दूसरे ही दिन १२ अगस्त, १९४७ को ६ बजे प्रातः रावलपिंडी ऐक्सप्रेस से मुझे बादामीबाग़ छोड़ना पड़ा। वह हमारा अन्तिम मिलन था या विदाई, यह किसे पता था ?

माता जी एक सच्ची भारतीय नारी तथा धर्मपत्नी थीं। वे पुराने विचारों की थीं, किन्तु छल-कपट रहित। पिताजी में उनकी बहुत ममता थी। उनके जीवन की एकमात्र यही साध थी कि उनकी मृत्यु पति के चरणों में हो। भगवान ने उनकी सुन ली। वे सच्ची माता, बहिन और दान पुण्य-शीला पत्नी थीं।

आज परिवार में बड़ा बुजुर्ग नहीं रहा। दादी जी तथा नानी जी भी हमें छोड़ गई हैं।

पिताजी भारत आने के लिए अपना नाम सरकार को दे चुके थे. किन्तु वे आ न सके। यदि वे सरकारी बंगला छोड़कर रेलवे लाइन के उस पार बादामी बाग़ आबादी में ही चले जाते, तो उनके लिए कोई खतरा नहीं था, किन्तु होनी को कौन टाल सकता है ?

उन्होंने मुझे सदैव हर कार्य में स्वतन्त्रता प्रदान की। पढ़ाई, विवाह तथा जीवन के हर क्षेत्र में। उन्होंने मुझ से चाहा कि मैं और जो चाहे बनूँ, पर 'बाबू' न बनूँ। नहीं जानता कि मैं उनके इस आदेश का पालन कर सका हूँ अथवा नहीं।

प्रयत्न करने पर भी उनका फ़ोटो मुझे प्राप्त नहीं हो सका। इससे अधिक आज कुछ लिखने की शक्ति मुझ में नहीं है।

— लेखक